आचार्य चतुरसेन

राज्याभिषेक

179

शारदा पुस्तकालय
(संजीवनी ...)
क्रमांक ... 179
राजस्थान

रावण सिंहासन से उठता हुआ बोला,
"हाय! लंका वीर शून्य हो गई।
अब इस काल-युद्ध में मैं किसे भेजूं?"
अच्छा, मैं स्वयं ही उस
अभागे राम का बल देखूंगा।"
अपने पराक्रमी पुत्र मेघनाद के हत होने पर
यह कहा था महाबली रावण ने;
परन्तु चौरासी दिन के युद्ध के
अंत में रावण का भी वध हुआ।
राक्षसराज का नाश हुआ पृथ्वी से।
धर्म और न्याय की विजय हुई।
आचार्य जी का यह उपन्यास
राम-रावण युद्ध से सीता के
भू प्रवेश तक की रोचक रोमांचक
कथा को इस प्रकार सुनाता है,
जैसे जीते-जागते संसार को
हम सामने देख रहे हों।
अंत में 'राम भाष्यम्' खण्ड बहुत ही महत्त्वपूर्ण है,
जो इतिहास पुराण संबंधी अनेकानेक नये और
खोजपूर्ण तथ्यों को सरल शैली में सामने लाता है।

□

राम-रावण युद्ध से सीता के भू प्रवेश
तक बेहद रोचक-रोमांचक-कथा
'राम-भाष्यम्'
सहित

हिन्द पॉकेट बुक्स

आचार्य चतुरसेन

राज्याभिषेक

भारत की सर्वप्रथम पॉकेट बुक्स

राज्याभिषेक
(उपन्यास)

© चन्द्र सेन: १९८६
नवीन सरस्वती सीरीज़ संस्करण: १९८७

प्रकाशक:
हिन्द पॉकेट बुक्स (प्रा०) लिमिटेड
जी० टी० रोड, शाहदरा
दिल्ली - ११००३२

प्रोसेसिंग:
आई० बी० सी० प्रेस, दिल्ली - ११००३२
मुद्रक :
कोणार्क प्रेस
लक्ष्मी नगर, दिल्ली-९२

RAJYABHISHEK
(Novel)
ACHARYA CHATURSEN

राज्याभिषक

हमारी उपन्यासकथा उस समय से आरम्भ होती है, जब राम ने लंका पर चढ़ाई कर रावण के साथ युद्ध छेड़ दिया था। युद्ध के आरम्भ में रावण ने पहले अपने महारथियों को युद्ध में भेजा। जब वह राम द्वारा मार दिए गए, तब रावण ने अतुलबल कुम्भकर्ण को राम से लड़ने के लिए भेजा। कुम्भकर्ण भी मारा गया, तब अपने छोटे पुत्र वीरवाहन को भेजा। वीरवाहन भी वीरगति को प्राप्त हुआ। वीरवाहन की मृत्यु का समाचार लेकर एक सैनिक ने रावण के सभाभवन में प्रवेश किया।

रावण का सभाभवन बिल्लौरी खम्भों पर विविध रत्नों से जड़ा था। छत्र की झालर में बड़े-बड़े मोती लटक रहे थे। बन्दनवारों में भांति-भांति के फूल गुंथे थे। महाबली रावण उच्च सिंहासन पर सिर नवाए बैठा था। बन्धु, मंत्री, सभासद सब अधोमुख बैठे ठंडी सांसें ले रहे थे। उनकी आंखों से अविरल अश्रुधारा बह रही थी, चंवर-वाहिनियों ने चंवर नीचे कर लिए थे और वे विषण्णवदन खड़ी थीं। छत्रधर ने छत्र पृथ्वी पर झुका दिया था। दंडधर और प्रहरियों ने खड्ग पृथ्वी पर झुका दिए थे, योद्धागण शस्त्र उलटे रख चुपचाप खड़े थे। सभा के मध्य में युद्धस्थल से आया हुआ एक सैनिक धूल और घावों से भरा धरती पर अपने टूटे हुए बर्छे के सहारे हाथ बांधे पड़ा रुदन कर रहा था।

रावण ने दीर्घ निःश्वास छोड़कर पूछा, "कह रे कह, पुत्र वीरवाहन का निधन-समाचार एक बार फिर कह।"

सैनिक कातर भाव से हाथ उठाकर बोला, "हाय स्वामी! कैसे कहूं? महाप्रतापी वीरवाहन के साथ सहस्रों योद्धा समर-सागर में खप रहे। कालबली ने सभी को ग्रस लिया।"

"तो पुत्र वीरवाहन अब पृथ्वी पर नहीं रहा? यह तो स्वप्न की-सी बात है। जिसके भय से देवता भी विकल रहते थे, उसे भिखारी राम ने

कैसे मार डाला ? कठोर शाल के वृक्ष को विधाता ने फूल की कोमल पंखड़ी से चीर दिया ? हाय पुत्र ! हाय वीरशिरोमणि ! किस पाप से मैंने तुम जैसे पुत्र को खो दिया ? अब कैसे इस दुःख को सहूंगा ? अब कौन कालयुद्ध में मेरी मान-प्रतिष्ठा की रक्षा करेगा ? अरे विधाता ! यह पापी राम तो लकड़हारे की भांति मेरे सैन्यरूपी वन को काटे डालता है। महापराक्रमी भाई कुम्भकर्ण को भी इस भिखारी ने काट डाला। पृथ्वी विजय करने वाले मेरे सारे ही सूरमा एक-एक करके कट गए। अरी अभागिनी शूर्पणखा ! तूने किस कुघड़ी में पंचवटी में इस पोनिया नाग को छेड़ा। हाय ! मेरी यह सोने की लंका राख का ढेर हो गई। यह हीरों के हार की भांति जगमगाती हुई नाटकशाला-सी मेरी आनन्दपुरी लंका श्मशान हो गई !"

मंत्री सारण हाथ जोड़ धैर्य देने आगे बढ़ा। उसने कहा, "वीर मुकुट-मणि महाराज ! राजन्, दास को क्षमादान हो। प्रभु ! पृथ्वी पर ऐसा कौन है, जो आपको समझा सके ? आप महाज्ञानी हैं, यदि बिजली गिरने से पर्वत की चट्टान टूट जाती है, तो क्या पर्वतराज अधीर हो जाते हैं ? महाराज ! संसार मायामय है, सुख-दुःख सब झूठा सपना है, अज्ञानी ही इसमें भूलते हैं।"

रावण ने दीर्घश्वास लिया, "मंत्रिवर ! तुम्हारा कहना सत्य है, मैं सब जानता हूं, परन्तु मेरा मन हाहाकार कर रहा है। अरे, मेरे हृदय के बाग के फूल चुन-चुनकर चोर चुरा ले गया !"

कुछ देर चुप रहकर सैनिक से उसने फिर पूछा, "अरे कह, महाबली वीरबाहन की मृत्यु कैसे हुई ?"

"महाराज ! मैं वह अद्भुत वीरगाथा कैसे कहूं ? उसने मतवाले हाथी की भांति शत्रुदल में घुसकर उन्हें कुचल डाला। उसकी हुंकार से धरती धसकने लगी। महाराज, उसने ऐसा युद्ध किया कि धरती की धूल ने उड़-कर सूरज को छिपा लिया। बाणों ने आकाश को पाट दिया। उसके हाथ से मारे हुए शत्रुओं की गणना नहीं हो सकती। शत्रु की सेना छिन्न-भिन्न होकर भाग गई। इतने ही में बैरी राम ने कालबाण लेकर युद्धक्षेत्र में प्रवेश किया। अब आगे क्या कहूं।"

"कह, कह, मैं सुन रहा हूं। तू बैरी राम के पराक्रम का बखान कर।"

"कैसे कहूं ? वीरबाहन ने लाल आंखें कर गिद्ध की भांति ज्यों ही राम पर छलांग मारी, त्यों ही उसने बड़ी सफाई के साथ बाणों से वीर को पाट दिया, फिर तो ऐसा युद्ध हुआ कि देवता चकित होकर देखने लगे। शस्त्रों की टनकारों से कानों के पर्दे फट गए, परस्पर शस्त्रों की टक्कर से आग

निकलने लगी। महाराज, सभी राक्षस उस समर में काम आए, पूर्वजन्म के पापों के बदले स्वामी को यह दारुण संदेश देने को यह अधम बच गया। स्वामी ! मैं महाबली वीरवाहन को शरशय्या पर असंख्य योद्धाओं के साथ सोता छोड़ यहां आया हूं। मेरा वध कराइए।"

इसी समय सभाभवन में राजमहिषी देवी चित्रांगदा निराभरण शरीर, खुले बाल, आंखों में अविरल अश्रुधारा, भारी-भारी निःश्वास लेकर गिरती-पड़ती सखियों समेत विलाप करती आई। उसका विलाप सुनकर छत्रधर के हाथ से छत्र गिर पड़ा। द्वारपालों के हाथ से तलवारें छूट गईं और सभासद अधीर होकर चीत्कार कर उठे। रावण ने चौंककर राज-महिषी की ओर देखा। राजमहिषी ने अश्रुपूरित नेत्रों से कहा, "नाथ ! विधाता ने मुझे एक मोती दिया था, जैसे चिड़ियां अपने बच्चों को बड़े यत्न से घोंसले में रखती है, उसी भांति इस अभागिनी ने उसे आपके पास रखा था। आप मेरे पति परमेश्वर और महावीर लंकाधिपति हैं। राजन ! दरिद्र के धन की रक्षा करना राजा का धर्म है। कहिए महाराज ! मेरा वह धन कहां है ? मेरा वह अनमोल मोती, मेरा पुत्ररत्न कहां है ?"

रावण ने दुःखी होकर अपनी पत्नी की ओर देखा, "प्रिये ! भाग्य-दोषी की कोई निन्दा नहीं करता, फिर तुम क्यों मेरा तिरस्कार करती हो ? तुम तो केवल एक ही पुत्र के शोक में अधीर हो; परन्तु मेरा हृदय हजारों पुत्रों के शोक से फटा पड़ता है। यह वीरनगरी लंका आज ऐसी हो रही है, जैसे गर्मी की लू में झुलसा हुआ बगीचा अथवा सूखी हुई नदी।" यह कहकर रावण रो पड़ा। चित्रांगदा भी रोते-रोते धरती पर गिर पड़ी।"

यह देख रावण अधीर हो उठा। उसने कहा, "देवी ! ऐसा विलाप न करो। उठो, तुम्हारे पुत्र के पराक्रम से मेरा वंश उज्ज्वल हो गया। उसने देश के बैरी का विध्वंस करके प्राण त्यागा।"

"महाराज ! जो वीर युद्ध में बैरी का नाश करता है, उसकी माता धन्य हैं; परन्तु नाथ ! सोचिए तो सही, क्या राम देश का शत्रु है ? कहिए, वह किस लोभ से यहां आया है ? वह सरयूतीर बसने वाला भिक्षुक क्या आपकी स्वर्णलंका और स्वर्णसिंहासन पाने के लिए युद्ध कर रहा है ? कहिए, स्वामी ! इस काल-अग्नि को किसने जलाया है ? हाय नाथ, अपने कुकर्म से राक्षस कुल को डुबोकर आप स्वयं भी डूब रहे हैं।"

यह कहकर विलाप करती और आंसुओं के नीर बहाती चित्रांगदा दुःखी मन वहां से चल दी। रावण सिंहासन से उठता हुआ बोला, "हाय ! लंका वीरशून्या हो गई। अब इस कालयुद्ध में मैं किसे भेजूं ? अच्छा, मैं

स्वयं ही उस अभागे राम का बल देखूंगा। सभासदो ! आओ प्राचीर पर चढ़कर देखें कि वीर शिरोमणि वीरवाहन रणभूमि में किस भांति पड़ा है। वीरशय्या पर वीरपुत्र को देखकर नयनों को तृप्त करें।"

यह कहकर वह प्राचीर की ओर चल दिया। पीछे-पीछे सब सभासद और योद्धा नतमस्तक हो धीरे-धीरे उसके पीछे चले। स्थान-स्थान पर सुभट-सूरमा भारी-भारी शस्त्र लिए पहरे पर उपस्थित थे। रावण सभासदों सहित प्राचीर पर चढ़कर समरभूमि को देखने लगा। युद्धभूमि में मृत पड़े सुभटों का विनाश देखकर वह दुःख और क्षोभ से भर गया।

"हाय ! स्वर्णराजमन्दिरों के उन्नत यह रत्न-जटित चूड़ा इस समय महापुरी लंका के किरीट की भांति दीख रहे हैं। पुष्पवाटिकाओं में रानियों के कनक प्रमोद भवन सूर्य की सुनहरी धूप में कैसे सुन्दर प्रतीत होते हैं ! कमलों से परिपूर्ण सरोवरों के तट पर फूलों से लदे हुए नवीन वृक्ष बसन्ती पवन के झकोरे खाकर मदमाती तरुणियों की भांति झूम रहे हैं। हाट, चतुष्पद की दुकानें हीरे-मोतियों से भरी हुई कैसी सुहावनी दीख पड़ती हैं ! मानो मानवती लंका को प्रसन्न करने के लिए उसके चरण तल में संसार ने अपनी सम्पदा चढ़ा दी है, किन्तु शोक, यही राक्षसपुरी जो कभी भोगों और सुखों का कामस्थल थी, आज श्मशान बनी हुई है।"

मंत्री ने आगे बढ़ विनयावनत हो हाथ जोड़कर कहा, "पृथ्वीनाथ ! दिन और रात्रि संसार के दो स्वाभाविक रूप हैं। स्वामी ! सब दिन समान नहीं होते।"

"किन्तु शत्रु के कटक को तो देखो, मदमत्त प्रहरी इस प्रकार चौकन्ने घूम रहे हैं जैसे पर्वत पर सिंह। उस सिंधुतट की रजत बालुका पर बैरी राम की सेना इस भांति बिखरी दीख रही है, जैसे आकाश में तारामंडल। वह देखो, पूर्व द्वार पर दुर्निवार नील पहरा दे रहा है। वह दक्षिण द्वार पर सौ हाथियों के बल वाला अंगद इस भांति घूम रहा है, जैसे हेमन्त ऋतु के अन्त में केंचुलत्यक्त विषधर भुजंग त्रिशूल के समान जीभ लपलपाता फिरता है। उत्तर की ओर महाविजयी सुग्रीव और पच्छिम की ओर स्वयं बैरी राम हैं, जिसकी चांदनी-रहित चन्द्रमा की भांति शोभा मलिन हो रही है। वायुपुत्र हनुमान और राक्षसकुल-कलंक विभीषण इसके साथ हैं। अरे, इन सबने मेरी स्वर्णलंका को इस भांति घेर रखा है, जैसे व्याध कौशल से जाल में व्याघ्र को घेर लेता है।"

"महाराज ! समरभूमि के इस भीषण दृश्य को तो देखिए। मरे हुए हाथियों के पुंज किस भीषण रीति से निश्चल पड़े हैं ! चंचल घोड़े गतिहीन हो गए हैं। अनगिनत रथों के छिन्न-भिन्न अंग-प्रत्यंग इधर-

उधर छितराए पड़े हैं। निषादी, सादी, शूली, रथी, महारथी और पैदल भेदभाव और मर्यादा का विचार भूलकर एकसाथ भूमि पर लोट रहे हैं। जगह-जगह पर वर्म, चर्म, अस्थि, धनु, भिन्दिपाल, तूण, शर, मुद्गदर और परशु पड़े हुए हैं। मृत वीरों के महा तेजस्कर आभरण, मणि-जटित किरीट शीर्ष बिखरे पड़े हैं। हा ! जैसे किसान सुनहरे धानों की बालियों को काटकर खेत में डाल देता है, वैसे ही इस बैरी रघुवंशी ने राक्षसकुल को काट फेंका है।"

"हाय पुत्र ! तुम जिस शय्या पर आज जा सोये हो, उसकी आकांक्षा वीरजन सदैव करते हैं। अरे, समर में जो डरे, वही मूढ़ है, फिर भी हे, वत्स ! मोह-मद में मेरा मन मुग्ध होकर कातर हो गया है। अरे, विधाता ! तू ही जगत का पिता है, मैं एक ही पुत्र के शोक से व्याकुल हो रहा हूं। तुम्हारी क्या दशा होती होगी ? हा, पुत्र ! मैं तुम्हारे बिना कैसे अब जीऊंगा ?"

"हे, शूर-मुकुटमणि ! इस अत्यन्त अद्भुत समुद्र-सेतु को तो देखिए। सागर के इस जल में शिलाएं ऐसी दृढ़ता से बंधी हैं कि क्रुद्ध सागर का प्रचंड तरंगाघात उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता, वह तो राजपथ-सा प्रशस्त है।

"वाह रे, अभिमानी जलधिपति ! क्या ही सुन्दर विजयमाल तूने अपने कण्ठ में डाली है। धिक्कार है तुझे ! इसी बूते तू अलंघ्य और अजेय कहाता था ? अरे, वरुणपुत्र ! कह, तू तो पवन से भी शत्रुता करते भय नहीं खाता था ? फिर तूने किस भांति भिखारी राम से डरकर यह बेड़ियां पहन लीं ? उठ और इस सेतु को बल से तोड़-फोड़कर प्रबल रिपु को अतुल जल में डुबोकर मेरे हृदय की ज्वाला को शान्त कर। तेरे ही बल पर स्वर्ण-लंका को इतना गर्व था।"

"महाराज ! आपका तेजबल जगत्-विख्यात है। देवता और दानव भी आपके नाम से कम्पित होते हैं। स्वामी ! यह समय कातर होने का नहीं है शत्रु को विजय करने का है। अब भी लंका वीरशून्या नहीं हो गई। सरयूतीरवासी भिक्षुक राम भाग्यबल पर ही जीता है। सो स्वामी ! पुरुष का भाग्य अज्ञेय है।"

"सत्य कहते हो मंत्रिवर ! ठीक है, अच्छा, अब मैं स्वयं ही राक्षस-कुल के मान की रक्षा करने जाऊंगा। अरे, लंका के शूरवीर योद्धाओ ! जाओ और सजो ! अब पृथ्वी राम या रावण से रहित होने वाली है।"

दो

लंका की उत्तरी दिशा में युद्धभूमि से दूर युवराज मेघनाद का प्रमोद वन था। यहीं उसका स्वर्णमहल था। स्वर्णमहल फूलों और रत्नों से सजा हुआ था। डालों पर कोयल कूक रही थी। भौंरे गूंज रहे थे। फूल खिले थे। झरने झर-झर झर रहे थे। द्वारों पर राक्षस स्त्रियां वीरवेश धारण किए, ढाल, तलवार लिए घूम रही थीं। उनकी वेणीं में मोती गुंथे थे। कुचों पर स्वर्णकवच कसा था, तरकश बाणों से परिपूर्ण थे। नितम्ब में करधनी, पैरों में नूपुर और वेणी में मोती थे। वीणा-मुरज-मुरली तथा सप्तस्वर बज रहे थे। मधुरकंठी बालाएं गा रही थीं। मेघनाद सुलोचना सहित स्वर्णसिंहासन पर बैठा मद्यपान कर रहा था।

गायन में उन्मत्त होकर मेघनाद ने मद्यपात्र अपनी पत्नी सुलोचना के अधरों से लगाकर कहा, "वाह ! जीवन भी इसी मद्य की भांति उन्माद-दाता हो रहा है। यह पृथ्वी कितनी सुन्दर है प्रिये !"

"केवल वीर पुरुष के लिए ही नाथ ! कृमि-कीट की भांति जीवित रहने वालों के लिए यही धराधाम नरकतुल्य है।"

"उन अधम कायरों की बातें जाने दो प्रिये ! आओ हम लोग एक-एक पात्र उस सुवासित मद्य का और पीकर इस सुवासित वासन्ती वायु की भांति झूमें।"

"पियो वीर स्वामी ! इस मधु के साथ इस चिरकिंकरी का चिरप्रेम भी पान करो।"

परन्तु इस आनन्द वेला में बाधा पड़ी। द्वार का पर्दा हटाकर प्रभाषा धाय ने चिन्तित भाव से कक्ष में प्रवेश किया। उसे देखते ही सब स्तम्भित हो गए। गायन और मद्यपान रुक गया। मेघनाद ने आसन से उतर उनके चरणों में प्रणाम करके कहा, "माता ! इस भवन में आज असमय में कैसे आईं ? लंका में कुशल तो है ?"

धाय ने मेघनाद को आशीर्वाद देकर कहा, "पुत्र ! कुशल कहां, स्वर्ण-पुरी लंका की दुर्दशा क्या कहूं ? तुम्हारा प्रिय भाई वीरबाहन मारा गया। शोक से उन्मत्त हो राक्षसाधिपति तुम्हारे पिता स्वयं युद्ध का साज सज रहे हैं।"

मेघनाद ने विस्मित होकर पूछा, "भगवति ! यह तुम क्या कहती हो ? किस पापिष्ठ ने मेरे प्रिय अनुज का वध किया ? उस तपस्वी राम को तो मैंने निशायुद्ध में मार डाला था। मेरे बाणों की मार से शत्रु सैन्य खण्ड-खण्ड हो गया था। हे, माता ! अब तुमने यह अद्भुत वार्ता कहां सुनी ?

कृपा कर मुझ दास से वृत्तान्त स्पष्ट कहो।"

"पुत्र ! सीतापति राम तो मायावी मनुष्य है, वह तुम्हारे हाथों मरकर भी फिर से जी उठा। तुम्हीं अब राक्षसकुल की मुकुटमणि हो। हे, पुत्र ! इस कालसमर में शीघ्र आकर राक्षसकुल के मान की रक्षा करो।"

यह सुनते ही मेघनाद ने क्रोध से कण्ठ की पुष्पमालाओं को तोड़कर और आभरणों को नोचकर फेंक दिया। फिर कहा, "धिक्कार है मुझे, हाय ! शत्रु ने स्वर्णलंका को घेर लिया है और मैं यहां रमणीदल में विहार कर रहा हूं। हा, क्या लंकापति के युवराज को यही शोभा देता है ? अरे, रथ लाओ। मैं अभी शत्रुओं का विध्वंस करके इस अपवाद को दूर करूंगा। लाओ, मेरे शस्त्र और कवच।"

यह कहकर वह उठ खड़ा हुआ। भीमकाय सैनिक बालाएं विविध शस्त्र और स्वर्णकवच से उसे सज्जित करने लगीं। युद्धवेश धारणकर जब वह जाने लगा, तब सुलोचना ने नेत्रों में जल भरकर कहा, "प्राणसखे ! मुझ दासी को छोड़कर कहां जा रहे हैं ? यह अभागिनी आपके बिना कैसे प्राण धारण करेगी ? नाथ ! गहन कानन में यदि लता स्वेच्छा से गजपद में लिपट जाए तो गजराज उसे पदाश्रय तो अवश्य ही देते हैं। हे, गुणनिधे ! मुझ किंकरी को आप क्यों त्याग रहे हैं ?"

मेघनाद ने उसे हृदय से लगाकर कहा, "सती सुलोचने ! तुमने इन्द्रजीत को जीतकर जिस दृढ़ बंधन में बांध रखा है, उस बंधन को कौन खोल सकता है ? चिन्ता न करो प्रिये ! मैं भिक्षुक राम का हनन कर शीघ्र ही लौट आऊंगा। चन्द्रवदनी ! मुझे जाने दो, विह्वल मत हो।"

यह कहकर वह रथ पर आरूढ़ हो पिता के आवास की ओर चल दिया। उसने देखा, मार्ग में विविध रणवाद्य बज रहे हैं। हाथी चिंघाड़ रहे हैं। घोड़े हिनहिना रहे हैं। पैदल और रथी हुंकार रहे हैं। वीर लौहवर्म पहन रहे हैं। ध्वजस्तम्भ पर गगनचुम्बी ध्वजा फहरा रही है। सुनहरे रथ इधर-से-उधर विद्युत्-गति से आ जा रहे हैं। सिरों पर कनक टोप पहने, म्यानों में विकराल तलवारें डाले, पीठ पर अभेद्य ढाल बांधे वीरों की पंक्ति-की-पंक्ति जुझाऊ बाजे बजाती आगे बढ़ रही है। मेघनाद का रथ दिशाओं को गुंजित करता हुआ रावण के द्वार पर जा पहुंचा। उसे देख राक्षस सैन्य हर्ष से चिल्ला उठी।

मेघनाद रथ से उतरकर सभा-भवन में पहुंचा और पिता के चरणों में गिरकर हाथ जोड़कर बोला, "पिता ! मैंने सुना कि वैरी राम फिर मरकर जी उठा। उसने मेरे वीर अनुज का वध किया है। आज्ञा कीजिए कि मैं आज उसका समूल नाश कर डालूं। मैं उसे भस्म करके उस भस्म को वायु

में उड़ा दूंगा अथवा आज्ञा होगी तो बांधकर चरणों में ला उपस्थित करूंगा।"

रावण ने उसे आलिंगन में भरकर कहा, "पुत्र ! तुम मेरी एकमात्र आशा हो। अब मैं तुम्हें उस कालसमर में नहीं भेजूंगा। वत्स ! भाग्य मेरे विपरीत है, तुम आनन्द से प्रमोद वन में विहार करो। मैं राम के बल को स्वयं ही देखूंगा।"

मेघनाद बोला, "हे, राजेन्द्र ! राम जैसे तुच्छ नर से इतना भय क्यों ? मुझ दास के रहते आप रण में जाएंगे, तो पृथ्वी के वीर हंसेंगे। देवराज इन्द्र उपहास करेगा। अग्नि रुष्ट हो जायेगी। मैंने राम को दो बार पराजित करके छोड़ा है। अब इस बार उसे नष्ट ही कर दूंगा। देखूं वह कैसे बच निकलता है।"

"पुत्र ! मैंने महाबली भाई कुम्भकर्ण को असमय जगाकर भेजा था। देखो, उसका शरीर समुद्र के किनारे ऐसे पड़ा है, जैसे बिजली के गिरने से टूटी पर्वत की चट्टान।"

"पिता ! मैं इस विद्रोही राम को अभी मारे डालता हूं।"

रावण कुछ देर पुत्र की वीर भावना पर सोचता रहा, फिर कहा, "अच्छा, वत्स ! यदि ऐसी ही तुम्हारी इच्छा है, तो आज रात्रि-जागरण कर निकुम्भिला यज्ञ कर लो। आओ, मैं तुम्हें सेनापति पद पर अभिषिक्त करता हूं। वीर सैनिको ! यह अजेय इन्द्रजीत मेरा पुत्र और तुम्हारा युवराज समस्त राक्षस सैन्य का अधिपति होता है।"

राजपुरोहित ने आगे बढ़कर कहा, "कुमार ! मैं सप्ततीर्थों के पवित्र जल से तुम्हारा अभिषेक करता हूं।"

जल छिड़ककर उसने मेघनाद की स्तुति की :

जिसके भीम धनुष की ध्वनि सुन सुरपति कम्पित होते।
जिसके अक्षय अग्निबाण छू अरिदल विचलित होते।
वीर शिरोमणि, कामिनि-रंजन, रावण-सुत विकराल।
सजा युद्ध के साज चला अब रावण-वीर विशाल।

तीन

अमरावती पुरी में देवराज इन्द्र की रात्रिसभा जुड़ी हुई थी। मणिमय छत्र सिर पर धारण कर इन्द्र इन्द्राणी सहित स्वर्णसिंहासन पर बैठे थे। किंकरियां चंवर डुला रही थीं। छहों राग और छत्तीस रागिनियां मूर्तिमती उपस्थित थीं। अप्सराएं नाच रही थीं, गन्धर्वगण देवताओं को स्वर्णपात्रों

में सुधा बांट रहे थे। उसी समय अपनी प्रभा से दिशाओं को आलोकित करती हुई देवी महालक्ष्मी वहां आईं। सब देवता तथा इन्द्र आसन छोड़कर उठ खड़े हुए और उन्हें स्वर्णपीठ पर आसन दिया !

इन्द्र ने हाथ जोड़कर पूछा, "वारीन्द्रनन्दिनी ! आपके चरणों की इस विश्व में सब इच्छा करते हैं। जिसपर आप कृपा करती हैं, उनका जन्म सफल हो जाता है। आज आपने अनायास ही यहां पधारकर मुझे कृतार्थ किया, सो किस पुण्य के फल से, कहिए ?"

यह सुन लक्ष्मी मुसकराईं, फिर बोलीं, "देवराज ! मैं चिरकाल से लंका में बंदिनी थी। राक्षसराज मुझे विविध रत्नों से पूजता था। अब वह अपने पाप-दोष से सवंश डूब रहा है; परन्तु जब तक वह जीवित है, मैं वहीं बन्दिनी रहूंगी। सो हे, देवराज ! इस राक्षसपुरी से मेरा उद्धार करो।"

"माता ! इस कार्य में मैं क्या उद्योग कर सकता हूं ?"

"तुम्हारा चिर शत्रु मेघनाद ही अब एकमात्र वीर लंका में शेष है। दशानन ने उसे सेनापति पद पर अभिषिक्त किया है। कल वह दुरन्त वीर राम पर आक्रमण करेगा। वह अजेय राक्षसकुमार यदि निकुम्भिला यज्ञ पूर्ण कर लेगा, तो फिर राम का निस्तार नहीं है।"

"देवी ! गरुड़ से नाग इतना नहीं डरते, जितना मेघनाद से। रावण का यह पुत्र रण में दुर्वार है। महासंहारक यह देवास्त्र वज्र भी उस महाबली ने परास्त कर दिया। माता ! वह सदाशिव के वर से रणंजय हुआ है। आपकी आज्ञा हो तो मैं कैलास जाऊं ?"

"देवराज ! तुरन्त जाओ, उनसे कहो, वसुन्धरा सदा रोया करती है। अनन्त आकाश अब उसका भार नहीं सह सकता। इस बार राक्षसपति समूल नष्ट न हुआ, तो भवतल रसातल को चला जाएगा। उन्हें मेरी याद दिलाकर भी कहना कि ऐसा कौन पिता है, जो दुहिता को पतिगृह से दूर बन्दी रहने दे ? यदि त्र्यम्बक न मिलें तो अम्बिका के चरणों में सब निवेदन करना।"

यह कहकर देवी महालक्ष्मी वहां से चली गईं। उनके जाने पर इन्द्र ने शची से कहा, "देवी ! तुम भी मेरे साथ चलो। परिमल सुधा के साथ होने से पवन का दुगुना आदर होता है। प्रस्फुटित कमल के गुण से मृणाल की शोभा बढ़ती है।"

शची हंस दी, फिर बोली, "देवेन्द्र ! जहां धूप वहां छांह। चलो, मैं चलूंगी।"

हिमालय के कैलास शिखर मानसरोवर पर शंकर का धवल हिम-प्रासाद था। पर्वत घनश्याम तरुलता से वेष्टित थे। स्थान-स्थान पर झरनों

से झर-झर जल बह रहा था। उमा एक स्वच्छ स्फटिक शिला पर स्वर्णासन बिछाकर बैठी थी। विजया चंवर डुला रही थी। जया राजछत्र लिए थी। इन्द्र और शची वहीं पहुंच प्रणाम कर हाथ बांध खड़े हो गए।

अम्बिका ने उन्हें वहां उपस्थित देख पूछा, "देवराज ! अपनी कुशल कहो। किस मनोरथ से तुम दोनों आज यहां कैलास में आये हो ?"

इन्द्र ने हाथ जोड़कर उत्तर दिया, "जगत् माता ! आप तो संसार का सब समाचार जानती हैं। लंकापति रावण ने आज अजेय मेघनाद को सेनापति पद पर अभिषिक्त किया है। कल प्रातःकाल निकुम्भिला यज्ञ में वह वर प्राप्त कर रण में प्रवेश करेगा। राजलक्ष्मी ने मुझे मेरे धाम में आकर यह समाचार सुनाया है। वसुन्धरा और शेष अब क्लान्त हो गए हैं, भार नहीं सह सकते। महालक्ष्मी अब कनकलंका त्यागने को चंचल हो गई हैं। इसलिए उन्होंने मुझ दास को आपके चरणों में यह निवेदन करने भेजा है कि किसी भांति कल राम की रक्षा तथा उस दुरन्त राक्षस की मृत्यु होनी चाहिए।"

अम्बिका ने हंसकर कहा, "रावण तो शिवभक्तों में श्रेष्ठ हैं। तापमेन्द्र उनसे परम् सन्तुष्ट हैं। इस समय वह समाधिस्थ हैं, इसीलिए लंका में इतनी दुर्दशा हो रही है।"

"किन्तु माता ! राक्षसराज परम् अधर्मी है। राम ने पिता की आज्ञा से सुख-भोग त्याग कानन-वास किया है। दुष्ट मायावी रावण ने उनकी परम् साध्वी पत्नी को छल से हरण कर लिया। वह पापी परधन और परस्त्री के लोभ में सदा डूबा रहता है, फिर उस मूढ़ पर आपकी इतनी अनुकम्पा क्यों रहती है ?"

शची ने निवेदन किया, "माता ! वैदेही के दुःख को देखकर किसका हृदय विदीर्ण नहीं होता ? वह सती अशोक वन में पिंजर-बद्ध पक्षी की भांति रहती है। उसका दुःख आपको छोड़ और कौन दूर कर सकता ?"

अम्बिका फिर हंस दीं। बोलीं, "मेघनाद ने तुम्हारे पति को रण में पराजित किया था। इसी से तुम रावण से द्वेष करती हो; परन्तु तुम्हारी इस इच्छा को पूर्ण करने की सामर्थ्य मुझमें नहीं है। राक्षस कुल के रक्षक तो त्र्यम्बक हैं। वे आज वृषभध्वज योग में मग्न हैं। वे योगासन कूट पर समाधिस्थ हैं। वहां गरुड़ की भी गति नहीं, तुम उनके पास कैसे जाओगे ?"

इन्द्र ने उत्तर दिया, "जगन्माता ! आपके बिना और किसी की सामर्थ्य है, जो उनके पास जाए। अब आप ही राक्षस कुल का नाश करके वसुधा का भार हलका कीजिए।"

सहसा शंख, घंटा और मंगलाचरण की ध्वनि से कैलासपुरी गन्धा-

मोद से भर गई। उमा का कनक सिंहासन हिल उठा। यह देख अम्बिका ने सखी से जिज्ञासा की, "अरी, विधुमुखी! असमय में यह कौन मेरी पूजा कर रहा है?"

सखी ने हंसकर उत्तर दिया, "दाशरथी राम जलपूर्ण घट को सिंदूर से अंकित कर आपके पद-पंकज में नीलोत्पलांजलि से पूजा अर्पण कर रहे हैं। अभये! उन्हें अभय दान दीजिए। रघुकुलश्रेष्ठ राम आपके परम भक्त हैं।"

"विजये! तुम देव-दम्पति का यथाविधि आतिथ्य करो। मैं विकट शिखर पर योगासन में आसीन धूर्जटि के पास जाती हूं, देखूं।"

यह कह उमा रत्न महल के भीतरी भाग में स्वर्णपीठ पर आ बैठीं और विचारने लगीं कि किस विधि से मैं महेश से मिलूं? क्या मदन-वधू रति की स्मरण करूं! यही ठीक होगा। उन्होंने रति को स्मरण किया। रति उषा की किरण की भांति साष्टांग दण्डवत् कर आ उपस्थित हुई। उमा बोलीं, "अरी मदन-मन-मोहिनी! योगेन्द्र योगासन पर समाधिस्थ बैठे हैं। कह, मैं कैसे उनकी समाधि भंग करूं?"

रति ने निवेदन किया, "देवि! आप मोहिनी मूर्ति धारण कीजिए। आज्ञा हो तो नाना प्रकार के आभरणों से आपको ऐसे सजा दूं कि पिनाकी ऐसे विवश हो जाएं, जैसे वसन्त में ऋतुपति वनस्थली की कुसुम-कुन्तला को देखकर मोहित हो जाता है।"

अम्बिका हंस पड़ीं। उन्होंने कहा, ऐसा ही कर।"

आज्ञा पाकर रति ने प्रभावमात्र से उमा को रत्नाभरणों से विभूषित कर दिया और दर्पण सामने करके बोली, "देखिए।"

दर्पण में अपनी छवि को देखकर उमा स्तम्भित रह गईं, "बहुत ठीक हुआ। अब अपने पति को भी बुला।"

"जो आज्ञा!" रति ने ध्यान किया। कुछ क्षण बाद ही मदन फूलों के धनुष-बाण लिए प्रादुर्भूत हो गया।

अम्बिका बोलीं, "मन्मथ! तुम शीघ्र मेरे साथ वहां चलो, जहां योगीपति ध्यानमग्न हैं।"

मदन यह सुन कुछ भयभीत हुआ, फिर कहा, "देवी! मुझ दास को ऐसी आज्ञा मत दीजिए। मुझे वह दिन याद है, जब महेश्वर के भालस्थित अग्नि ने सहसा वज्रपात की भांति मुझ भस्म कर दिया था। उस समय मैंने आर्त्तनाद करके इन्द्र, चन्द्र, पवन, सूर्य सबको पुकारा; परन्तु कोई भी नहीं आया। तब से मैं भवेश के स्मरणमात्र से मग्नोद्यम हो जाता हूं।"

अम्बिका ने हंसते हुए कहा, "अनंग! अब तुम भय को त्याग निःशंक

मेरे साथ चलो। उस समय जिस अग्नि ने तुम्हें जलाया था, वह आज तुम्हारी ऐसी पूजा करेगी, जैसे प्राणनाशकारी विष रसायन विधि द्वारा औषधि बनकर प्राणों की रक्षा करता है।"

मदन ने प्रणाम करके उत्तर दिया, "अभये ! जब आप अभयदान देती हैं, तब किसे त्रिभुवन में भय है, परन्तु शुभे, आप यदि इस मोहिनी वेश में मंदिर से बाहर जाएंगी, तो इस रूप-माधुरी को देखकर सारा जगत् मत्त हो जाएगा, इसलिए आप अपने अंगों को माया के आवरण में ढक लीजिए।"

"ऐसा ही सही; चलो।" अम्बिका ने माया से अपने शृंगार को छिपा लिया और दोनों चल दिए।

उच्च हिमकूट पर जटाधारी शिव ध्यानस्थ बैठे हुए थे। रात्रि का समय था। मदनसहित उमा बादलों को छिन्न-भिन्न करती वहां आ पहुंची, अम्बिका ने हंसकर मदन से कहा, "देव ! अब तुम अपने पुष्पबाण छोड़ो।"

कामदेव ने घुटने टेककर बाण छोड़े। बाणों के प्रभाव से असमाधिस्थ होकर शंकर ने चौंककर कहा, "अरे, मन चंचल क्यों हो रहा है ?" फिर नेत्र खोलकर इधर-उधर देखने लगे। मदन उमा के चरणों में छिप गया। शंकर ने उमा का मोहिनी रूप देखा, तो बोले, "अरे, प्रिये ! तुम इस निर्जन वनस्थली में अकेले कैसे आई हो ?"

अम्बिका हंसती हुई आगे बढ़ आईं। उन्होंने कटाक्ष फेंककर उत्तर दिया "योगेन्द्र ! आप मुझ दासी को भूलकर विरल वन में वास करते हैं, इसीलिए श्रीचरणों के दर्शनों की आशा से यहां आई हूं। क्या पत्नी का सहचरी को साथ लेकर पति के पास आना अनुचित है ?"

"आओ, प्रिये ! यहां बैठो।" कहकर उन्होंने उमा को व्याघ्रचर्म पर स्थान दिया। वसन्त ऋतु का प्रादुर्भाव होने लगा, फूल खिलने लगे। मकरन्द लोभी भौंरे गूंजने लगे, कोयल गाने लगी। मलय वायु फैल गई। मदन ने ताककर फिर कुसुम-शर छोड़ा। इससे शिव के मस्तक की अग्नि अन्तर्धान हो गई। महादेव मोहन रूप धारण करके हंसने लगे, फिर बोले, "प्रिये ! तुम्हारे मन की बात जानता हूं। देवराज दम्पति तुम्हारे पास किस इच्छा से आए हैं, वह भी जानता हूं। राक्षसराज रावण मेरा भक्त है; परन्तु वह दुष्ट अब अपने कुकर्मों से अपनी अवनति कर रहा है, फिर भी उसकी दुर्दशा का स्मरण कर मेरा हृदय विदीर्ण होता है; परन्तु देव हो या दानव, कर्म की गति को कोई नहीं रोक सकता।"

"देवाधिदेव ! आज दुर्जय मेघनाद निकुम्भला यज्ञ पूर्ण कर प्रभात ही में राम का संहार करेगा।"

"उमा ! तुम काम को देवेन्द्र के पास भेजकर उन्हें कहलाओ कि माया देवी के निकेतन में तुरन्त जाए। माया के ही प्रसाद से वीर लक्ष्मण मेघनाद का वध कर सकेगा।"

यह सुन अम्बिका ने मदन को आज्ञा दी, "हं, अनंग ! तुम तुरन्त देवराज को योगेन्द्र का सन्देश दो।"

मदन 'जो आज्ञा' कहकर वायु वेग से वहां से चल दिया और इन्द्र को योगेन्द्र का सन्देश दिया। महामाया अपने शक्तीश्वरी मणिमहल में नीलमणि के आसन पर बैठी हुई थीं। उनके शरीर से सूर्य के समान तेज निकल रहा था। वहीं पहुचकर इन्द्र ने उन्हें प्रणाम किया और कहा, "देवी महामाया ! मैं महेश के आदेश से आपकी शरण आया हूं।"

"देवाधिदेव की क्या आज्ञा है ?"

"देवी ! मुझ दास को बताइए कि कल सुमित्रानन्दन दशाननपुत्र को किस कौशल से जीत सकेंगे ? महेश्वर ने कहा है कि आपके ही प्रसाद से सौमित्र अजेय मेघनाद का वध कर सकेंगे।"

माया कुछ सोच में पड़ गईं, फिर कुछ अस्त्रों को देती हुई बोलीं, "जब दानवराज तारकासुर ने तुम्हें पराजित करके देवगण को अति त्रास दिया था, तब कुमार कार्तिकेय को वृषभध्वज ने रुद्र तेज से ओत-प्रोत अस्त्र दिए थे, जिनसे उसने उस असुर का संहार किया था। यही वे अस्त्र हैं। यह अभेद्य ढाल है और इस खड्ग में स्वयं यमराज का वास है। यह अक्षय तरकश है, इसके बाण महाविषधर कालसर्प के समान हैं और यह वह अमोघ धनुष है।"

इन्द्र ने हंसकर कहा, "मुझ दास का रत्नमय धनुष तो इसके सामने अति तुच्छ है। यह श्रेष्ठ ढाल तो सूर्य की भांति नेत्रों को चकाचौंध कर रही है, यह कृपाण भी अग्निशिखा की भांति महा तेजस्कर है। ऐसा तरकश भी अन्य नहीं है।"

"देवराज ! निश्चय इन्हीं अस्त्रों से मेघनाद की मृत्यु होगी; परन्तु त्रिभुवन में ऐसा कोई नहीं है, जो न्याययुद्ध में मेघनाद का वध कर सके। तुम इन अस्त्रों को लक्ष्मण के पास भेज दो। कल मैं स्वयं लंकापुरी जाकर लक्ष्मण की संग्राम में रक्षा करूंगी। हे, बली सहस्राक्ष ! कल जब उषा के आगमन से फूल खिलेंगे और पूर्व दिशा उज्ज्वल होगी, उससे प्रथम ही वीरेन्द्र लक्ष्मण तुम्हारे चिरशत्रु को मारकर तुम्हें त्रासहीन करेगा और लंका का सौभाग्य-सूर्य अस्त हो जाएगा। अब तुम सुरपुर को जाओ।"

इन्द्र वन्दना कर और अस्त्र ले वहां से चल दिए। अपनी पुरी में आकर इन्द्र ने चित्ररथ को उन अस्त्रों को देकर कहा, "गन्धर्वराज ! तुम इन

अस्त्रों को बड़े यत्न से लंका ले जाओ। राम से कहना कि इन्हीं अस्त्रों से दुरन्त रिपु मेघनाद का वध होगा। किस प्रकार से वध करना होगा, यह मायादेवी स्वयं ही सौमित्र को कहेंगी। तुम उनसे यह भी कहना कि इन्द्र-लोकवासी उनके मंगलाकांक्षी हैं और माहेश्वरी उमा उनपर प्रसन्न हैं। रावणि के मरने पर रावण अवश्य ही मारा जाएगा। राम को अभय प्रदान करना और कहना, वे अवश्य वैदेही को प्राप्त करेंगे।"

चित्ररथ बोला, "देवराज ! इतने अल्प समय मैं कैसे लंका पहुंचूंगा ! फिर दैत्य मुझे लंकापुरी में देखकर विवाद करें तो ?"

"रथिवर ! तुम मेरे रथ पर चढ़कर जाओ। यदि कदाचित् राक्षस तुम्हें लंकापुरी में देखकर विवाद करें, तो मैं मेघदल को गगनाच्छादित करने के लिए आज्ञा दूंगा और प्रभंजन को बुलाकर वायुकुल को मुक्त करवा दूंगा, चपला चमकने लगेगी और वज्र-गर्जन से गगन परिपूर्ण हो जाएगा।"

"जो आज्ञा !" कहकर चित्ररथ चल दिया। उसके जाने पर इन्द्र ने प्रभंजन को आज्ञा दी, "वायुपति ! तुम लंकापुरी में इस समय प्रबल आंधी चलाओ। समस्त वायुदल को छोड़ दो और मेघदल को साथ लेकर अपने बैरी सिन्धु से क्षण-काल के लिए खूब द्वन्द्व करो।"

प्रभंजन भी 'जो आज्ञा' कहकर चल दिया।

लंका में एकाएक आंधी चलने लगी, बिजली कड़कने और मेघ गरजने लगे। प्रलय का-सा अन्धकार हो गया। समुद्र में तूफान उठने लगे। रात्रि के ऐसे भयंकर समय में चित्ररथ का ज्योतिर्मय रथ राम के सम्मुख उतरा। वानरयूथ आश्चर्यचकित उसे देखने लगे। रथी चौकन्ने होकर शस्त्र सम्भालने लगे। राम ने अनुचरों सहित आगे बढ़कर चित्ररथ से पूछा, "हे, दिव्यरूप पूज्यवर ! आप कौन हैं और दास आपकी क्या सेवा कर सकता है ? बैठाने योग्य स्वर्णासन मेरे पास नहीं है, तथापि मुझ दास पर कृपा कर इस कुशासन पर बैठिए।"

चित्ररथ ने कुशासन पर बैठकर कहा, "दाशरथि ! मेरा नाम चित्ररथ है। मैं गन्धर्वराज हूं और मैं देवेन्द्र की आज्ञा से आपके पास आया हूं। देवराज सब भांति आपका मंगल चाहते हैं। ये अस्त्र लक्ष्मण के लिए देवराज ने भेजकर कहलाया है कि इन्हीं से अजेय रावणि मारा जाएगा। मायादेवी उषा के उदय-काल में प्रकट होकर स्वयं यह बताएंगी कि किस भांति वीर मेघनाद मारा जाएगा।"

"गन्धर्वराज ! इस शुभ सम्वाद से मुझे अतिशय आनन्द हुआ है। हे, देव ! मैं तुच्छ नर हूं, फिर कैसे अपनी कृतज्ञता प्रकट करूं ?"

चित्ररथ ने हंसकर कहा, "रघुवीर ! देवगण तो धर्मानुष्ठान से ही प्रसन्न होते हैं। सो आप परमधर्मिष्ठ हैं। आप देवकुल के प्रिय हैं। महामाया अभया आप पर प्रसन्न हैं।"

"हे, देव ! मैं आपको प्रणाम करता हूं।'

"राक्षसों के उपद्रव के भय से देवराज इन्द्र ने मेरे साथ मेघ, आंधी और बिजली भेज दी थी। संसार इस प्रलय के गर्जन-तर्जन से क्षुब्ध हो रहा है। अब मैं जाता हूं। मेरे जाने पर ही इनका वेग शान्त होगा। आपका कल्याण हो।" यह कह चित्ररथ रथ पर बैठ वायुवेग से चल दिए। सब लोग चकित हो देखने लगे।

चार

सूर्य अस्त हो रहा था। मेघनाद के प्रमोद वन में भांति-भांति के फूल खिले थे और फव्वारे चल रहे थे। सखियां इधर-उधर फूल चुनती फिर रही थीं। कुछ मालाएं गूंथ रही थीं। सुलोचना अपने पति मेघनाद के विरह में व्याकुल हो स्फटिक शिला पर अधोमुख पड़ी रो रही थी। सखियां विषण्ण-वदन उसके निकट बैठ बांसुरी, वीणा, मृदंग, बजाकर उसे प्रसन्न करने का विफल प्रयत्न कर रही थीं। सुलोचना ने एक सखी के गले में हाथ डालकर कहा, "देख, सखी ! यह अंधेरी रात कालसर्पिणी की भांति मुझे डसने आ रही है। अरी, इस अन्धनिशा में अरिन्दम इन्द्रजीत कहां है ? अभी आऊंगा, कहकर वह महाबली चला गया। अभी तक नहीं आया। कहो, इतना विलम्ब क्यों हो रहा है ?"

सखी ने उत्तर दिया, "प्यारी सखी ! मैं नहीं जानती कि वे क्यों अभी तक नहीं आए; किन्तु सखी, चिन्ता न करो। वे राम का नाश करके आ ही रहे होंगे। अरी, जिसका शरीर सुरासुर के शरों से अभेद्य है, उससे कौन युद्ध करेगा ? फिर तुम्हारे सतीत्व के प्रभुत्व से तुम्हारे प्राणनाथ पृथ्वी पर अजेय हैं। लो, ये पुष्पमालाएं हमने गूंथी हैं, तुम हंस-हंसकर स्वामी के कंठ में डालना।"

सुलोचना ने सूर्यमुखी का कुम्हलाया फूल देखकर कहा, "अरे पुष्प ! सूर्य के बिना तेरी इस निशाकाल में जो दशा हो रही है, वह खूब अनुभव कर रही हूं मैं। अरे, तेरी ही भांति मेरे हृदय में भी इस समय अंधकार ही अंधकार है।"

सखी ने उसे धीरज देते हुए कहा, "प्रिय ! इतनी अधीर मत हो।"

"अरी, विच्छेद की इस ज्वाला से तो मेरे प्राण चले जाते हैं। मैं जिस

सूर्य के तेज के सहारे जीती थी, वह तो अस्ताचल को जा रहा है। यह सूर्यमुखी तो उषाकाल में फिर सूर्य को देख लेगा; पर क्या मैं भी कुछ आशा करूं ?"

"अवश्य, तुम उषा के उदय होने पर अपने प्राणनाथ से उसी भांति मिलकर प्रसन्न होगी, जिस भांति चकवी चकवा से मिलकर तृप्त होती है।"

"अरी, यह कालरात्रि कैसे व्यतीत होगी ? उषा का उदय क्या अभी होगा ? तब तक तो मैं इस वियोगाग्नि में जलकर भस्म हो जाऊंगी। सखी मैं तो लंका में उनके पास अभी जाऊंगी।"

"आज तुम लंका में कैसे जाओगी ? अलंघ्य सागर के समान राम के वानर सैन्य ने लंकापुरी को घेर रखा है। साक्षात् यमराज के समान असंख्य दण्डधारी योद्धा चारों ओर चौकन्ने होकर फिर रहे हैं।"

सुलोचना ने क्रुद्ध-सी होकर कहा, "अरी, यह तू क्या बकती है ? क्या तू यह नहीं जानती कि जब नदी अपना पर्वत-गृह छोड़कर समुद्र से मिलने को गमन करती है, तब किस की सामर्थ्य है, जो उसे रोके ? मैं दानव-नन्दिनी और राक्षसकुल वधू हूं। विश्वविख्यात राक्षसराज रावण मेरा श्वसुर और अजेय इन्द्रजीत मेरा पति है। क्या मैं भिखारी राम से डरती हूं ? मैं अपने भुजबल से लंका में प्रवेश करूंगी। देखूं, कौन मुझे रोकता है। सखियो ! सज्जित हो जाओ, दुन्दुभी बजा दो, तलवार म्यान से निकाल लो, धनुषों को टंकार लो, तरकशों को कालशरों से भर लो। गिरिशृंग, कन्दरा, सागर और वन आज कम्पायमान होंगे। आज मैं बलपूर्वक शत्रु-शिविर को भेदकर लंका में प्रवेश करूंगी। लाओ, मेरे अस्त्र-कवच-अश्व।"

सखियां दौड़कर सुलोचना को समर-साज लाकर सजाने लगीं। शीश पर जड़ाऊ किरीट, उन्नत वक्ष पर लौहवर्म, कमर में रत्नजटित कमरबन्द, पीठ पर स्वर्णढाल, नीलम के कोश में सूक्ष्म तलवार, हाथ में भयानक शूल। इस वीरवेश में सजकर सुलोचना ने बिजली की भांति कड़ककर कहा, "वीर दैत्यबालाओ ! मैं यह प्रतिज्ञा करती हूं कि निज भुजबल से राघव के कटक को पराजित कर मैं नगर में प्रवेश करूंगी और वीरेन्द्र के पास जाऊंगी। हम दानवबालाएं हैं। शत्रु का वध करना अथवा शत्रुशोणित नद में डूब मरना दानवकुल का नियम है। हमारे अधर में मधु और लोचन में गरल है। चलो, तनिक राम का बल देखें। अरी, मैं क्षण-भर उस रूप को देखूंगी, जिसे देखकर शूर्पणखा पंचवटी में मोहित हो गई थी। मैं उस यति लक्ष्मण को देखूंगी, जिसने लंका को भयाकुल कर रखा है। मैं उस राक्षस-

कुलांगर विभीषण को नागपाश में बांध लाऊंगी। जैसे हथिनी कमलवन को कुचलती है, उसी भांति मैं उस भिक्षुक राम के सैन्य को आज कुचल डालूंगी।"

सब दैत्यबालाएं जोर से हुंकार भर अपने-अपने शस्त्र सजाने लगीं। धौंसे बजने, घोड़े हिनहिनाने और हाथी चिंघाड़ने लगे।

सुलोचना एक सौ वीरांगनाओं सहित घोड़े पर सवार, अस्त्र-शस्त्रों से सज्जित, सैकड़ों मशालों सहित लंका के पश्चिम द्वार पर पहुंची। संगिनियों के एक हाथ में तलवार तथा दूसरे में मशाल थी। एकाएक सब स्त्रियां भीषण शंखध्वनि कर अपने-अपने धनुष टंकारने लगीं। उनकी यह टंकार सुन वानरयूथ चौंक पड़े। द्वाररक्षक हनुमान ने आगे आ गरजकर पूछा, "तुम कौन हो और इस रात्रि में प्राण गंवाने यहां कैसे आई हो ? क्या तुम नहीं जानतीं कि इस द्वार पर हनुमान का जाग्रत पहरा है, जिसका नाम सुनकर राक्षसपति रावण थरथर कांपता है ? कहो, तुम कौन हो और क्यों माया से यह स्त्रीवेश बनाया है ? मैं बाहुबल से माया का भेदन करता हूं। मेरा स्वभाव है कि जहां शत्रु मिला, वहीं कुचल दिया।"

सुलोचना की एक सखी ने उत्तर दिया, "अरे, पशु ! तुझ क्षुद्र जीव के कौन मुंह लगे। अपने स्वामी राम को यहां बुला ला। सिंहिनी शृगाल से विवाद नहीं करती। जा, मैं तुझे छोड़े देती हूं। तूने अरिन्दम इन्द्रजीत का नाम सुना होगा, सती सुलोचना उनकी पत्नी हैं। वे पति-पद पूजने निज बाहुबल से लंकापुरी में प्रवेश करेंगी। तू जाकर सीतापति, लक्ष्मण आदि दुर्दमनीय वीरों को और राक्षसकुलकलंक विभीषण को शीघ्र बुला। अरे, मूढ़ ! आज हम देखेंगे, किस योद्धा में कितना बल है !"

"सुन्दरी ! मेरे प्रभु राम सिन्धु को शिलाओं से बांधकर असंख्य वीरों के साथ इस पुरी में आए हैं। राक्षसराज उनका बैरी है। तुम अबलाओं से उनका विवाद नहीं है। तुम क्या चाहती हो, सो निर्भय होकर कहो, मैं जाकर प्रभुपद में निवेदन करूं।"

यह सुन सुलोचना आगे बढ़कर बोली, "राम मेरे पति का बैरी अवश्य है; परन्तु मैं इस कारण से उससे विवाद करना नहीं चाहती। मेरे पति त्रिभुवन-विजयी हैं, अतः उनके रहते मेरा रिपु से युद्ध करने का प्रयोजन नहीं; परन्तु स्मरण रखो, जो विद्युच्छटा नेत्रों का रंजन करती है, उसके स्पर्शमात्र ही से प्राणी भस्म हो जाता है। सो, हम उसी भांति की सुन्दरियां हैं। यदि कोई हमारी इच्छा में बाधा उपस्थित करता है, तो हम उसे बिना मारे नहीं छोड़तीं। सो हे, शूर ! तुम मेरी इस सखी को राम के पास ले जाओ। यह विस्तार से उनसे मेरी प्रार्थना कह देगी।"

हनुमान सुलोचना की दूती को साथ लेकर राम के शिविर की ओर चले। राम व्याघ्रचर्म पर बैठे थे, सामने धनुष लिए लक्ष्मण खड़े थे, बगल में विभीषण और अन्य वीर थे। विविध दिव्य शस्त्र चमक रहे थे। धूपदान में धूप जल रहा था। सहसा सैन्यकोलाहल सुन विभीषण ने भयभीत हो कहा, "प्रभु ! यह कैसा प्रकाश है ? क्या असमय ही उषा का उदय हो गया ?"

राम ने आश्चर्य से देखकर कहा, "यह तो कोई भैरवी-सी वामा या दानवी चली आ रही है। यह लंका मायापुरी है और तुम्हारा ज्येष्ठ भ्राता कामरूप है। मित्र ! भली भांति देखो, यह क्या रहस्य है ? इस विपत्ति-काल में इस दुर्बल सैन्य की रक्षा इस राक्षसपुरी में तुम्हीं कर सकते हो।"

हनुमान दूती सहित वहां आ पहुंचे और हाथ जोड़कर बोले, "प्रभु ! जब मैं अलंघ्य सागर को लांघकर लंका में आया था, तब भयंकर प्रचंडा कर में कपाल और खड्ग लिए मुण्डमाल पहने वहां फिरती मैंने देखी थी, फिर मैंने मन्दोदरी आदि शशिकला समान सभी अनिन्द्य राक्षस कुलवधुओं को घर-घर जाकर देखा था। सब के अंत में अशोक वन में शोकसंप्त माता जानकी के भी दर्शन किए थे, किन्तु जो तेजमूर्ति रूप-उजागरी दैत्यबाला आज मैंने देखी, वह तो त्रिभुवन में कहीं किसी ने न देखी होगी। हे नाथ ! वह मेघनाद धन्य है, जिसने मेघरूपी पाश में इस सौदामिनी को बांध रखा है। वही दैत्यबाला सुलोचना सिंहिनी की भांति सौ वीरांगनाओं सहित शिविर के द्वार पर उपस्थित है। उसकी प्रार्थना चरणों में निवेदन करने यह दूती आई है'"

दूती ने आगे बढ़ हाथ जोड़कर निवेदन किया, "मैं राघवेन्द्र और सब गुरुजनों के पदों में प्रणाम करती हूं। मेरा नाम नरमुण्डमालिनी है। मैं वीरेन्द्र केसरी इन्द्रजीत की पत्नी दैत्यबाला सुलोचना की दासी हूं।"

राम ने उसे आशीष देकर कहा, "दैत्यबाले ! तुम किसलिए मेरे पास आई हो ? तुम्हारी सती स्वामिनी को मैं किस प्रकार संतुष्ट कर सकता हूं ?"

"हे, वीर ! आप बाहर आकर हम सबसे युद्ध कीजिए अथवा मार्ग दीजिए। सती सुलोचना पतिपद पूजने लंका में जाना चाहती हैं। आपने बाहुबल से अनेक राक्षसवीरों का वध किया है, अब राक्षसवधू आपसे युद्ध करना चाहती हैं। हे, सीतापति ! अब उनसे युद्ध होने दो। हम एक सौ हैं, आप जिसे कहेंगे, वह अकेली युद्ध करेगी। चाहे धनुष-बाण लो, चाहे ढाल-तलवार, मल्लयुद्ध में भी हमें आपत्ति नहीं। जैसी भी रुचि हो, अब विलम्ब का काम नहीं।" यह कहकर वह सिर नीचा किए खड़ी हो गई।

राम ने उत्तर दिया, "सुन्दरी ! मैं अकारण किसी से विवाद नहीं करता। रावण मेरा शत्रु है और तुम सब उसकी कुलवधुएं हो; किन्तु क्या तुमने कोई अपराध किया है, जो मैं तुम्हारे साथ बैरी जैसा बर्ताव करूं ? राम का जन्म वीरकुल में हुआ है, तुम्हारी स्वामिनी वीरपत्नी है। मैं सहस्र मुख उसकी पतिभक्ति की प्रशंसा करता हूं और बिना युद्ध किए ही हार मान लेता हूं। जगत को विदित है कि राम भिक्षुक है, इसलिए तुम्हें आशीर्वाद देता हूं कि तुम प्रसन्न रहो।" फिर उन्होंने हनुमान से कहा, "हे, मारुति ! तुम तुरन्त सावधानी से वामादल को संतुष्ट कर शिविर से पार निकाल दो।"

हनुमान पद-वन्दना कर चल दिए, दूती भी चल दी।

विभीषण हंसकर बोले, "रघुपति ! तनिक बाहर आकर सुलोचना का पराक्रम देखिए। कैसा अपूर्व कौतुक है ! कहिए, इस वीर्यवती रणचंडी से कौन युद्ध कर सकता है ?"

"मित्र ! मैं तो दूती की आकृति देखकर शंकित हो गया था। अरे, इस बाघिनी को जो छेड़े, वह मूढ़ है। वह हमारे कटक के बीच कैसे जा रही है, जैसे दो पर्वतों के बीच हथिनी जाती है। मित्र ! ये विद्युत्-प्रभा-सी वामाएं कौन-कौन हैं ?"

"सबसे आगे कृष्णवर्ण घोड़े पर हाथ में हेमध्वज लिए नरमुण्डमालिनी है। उसके पीछे अतुलित विद्याधरी की भांति शोभायमान बाघकरी है। देखिए, वीणा, बांसुरी, मृदंग, मंजीरा सब यन्त्र मधुरध्वनि से बज रहे हैं। उनके पीछे वीरांगनाओं के बीच शूलपाणि सुलोचना है।"

"वाह ! जैसे सिंह की पीठ पर महिषमर्दिनी दुर्गा। उसी भांति यह वीर्यवती अपने वामादल के साथ बैरीदल का तिनके-भर भी भय न मानकर किस भांति धीरगति से जा रही है ! मित्र, चित्ररथ रथी ने जो कहा था, कि साक्षात् मायादेवी मुझ दास को सहायता देने आएंगी, कहीं यही तो वे नहीं हैं ? कहीं देवी ने ही छल से लंका में न प्रवेश किया हो ?"

"राघव ! विख्यात दैत्य कालनेमि की तनया सुलोचना यही है। इसका जन्म महाशक्ति से हुआ है। इसे पराजित करने की शक्ति किसमें है ? जिस सिंह के भय से सहस्राक्ष इन्द्र सुख की नींद नहीं सोता है, उसे इसने पदतल में डाल रखा है। जैसे जलधारा दावानल को शमित करती रहती है, वैसे ही यह दैत्यबाला अपने प्रेमालाप से कालाग्नि रूप मेघनाद को शान्त किए रहती है। तभी स्वर्ग में देवता, पाताल में नाग, नरलोक में नर सुख से रह पाते हैं।"

"सत्य है मित्र ! मेघनाद महारथी है। मैंने परशुराम को युद्ध में पर्वत

के समान अटल देखा है; परन्तु मेघनाद उनसे अधिक अटल है; किन्तु देखो, अब क्या किया जाए ? अब तो सिंहिनी सिंह के साथ आकर मिल गई। हे, सखे ! रावण कालसर्प है और मेघनाद उसका विषदन्त, उसी के तेज से वह तेजवान हो रहा है। वह विषदन्त किसी भांति टूटे, तो मेरा मनोरथ सफल हो। नहीं तो सेतु बांधकर इस कनकलंक में आना व्यर्थ है।"

"राघव ! आप सत्य कहते हैं; परन्तु राक्षसकुल तो अपने ही पाप से नष्ट हो रहा है। मेघनाद का वध अवश्य होगा; परन्तु सावधान रहिये, सुलोचना महावीर्यवती है और उसकी संगिनियां सिंहिनी हैं। जिस वन में सिंहिनियां आती-जाती हों, वहां के निवासियों को सदा सावधान रहना चाहिए। रात्रि में सबको चौकन्ना रहना होगा।"

"मित्र ! आप कृपाकर लक्ष्मण के साथ द्वार-द्वार जाकर सब सेना का निरीक्षण कर लें कि कौन कहां जाग रहा है। वीरवाहन के साथ युद्ध से सब थक गये हैं। देखना चाहिए कि अंगद कहां है, नल-नील और सुग्रीव कहां हैं। पश्चिमी द्वार पर धनुष-बाण लिये मैं उपस्थित हूं।"

पांच

बहुत रात्रि व्यतीत हो चुकी थी, परन्तु देवराज इन्द्र अभी तक कुसुम शय्या पर नहीं गये थे। शची मोहिनी रूप धरे सम्मुख खड़ी थी और अप्सराएं हाथ बांधे उपस्थित थीं। शची ने कहा, "देवराज ! आपकी इस चरणदासी ने ऐसा क्या अपराध किया कि आप कुसुम-शय्या से विरत होकर चिन्तामग्न बैठे हैं ? मेनका चौंक पड़ती है, उर्वशी जड़वत खड़ी है, चित्रलेखा चित्रलिखित-सी खड़ी है। निद्रादेवी भय से आपके निकट आने का साहस नहीं करती। भला, यह घोररात्रि क्या जागरण करने के योग्य है ?"

"देवी ! मैं यह सोच रहा हूं कि कल लक्ष्मण कैसे दुष्ट मेघनाद का वध करेगा।"

"कान्त ! लक्ष्मण को वे अस्त्र तो मिल ही गये, जिनसे तारक का वध किया गया था। आपके भाग्य से शंकर और पार्वती अपने पक्ष में हैं। मायादेवी स्वयं लक्ष्मण को विधि बतायेंगी, फिर अब यह चिन्ता क्यों ?"

"देवी ! तुम्हारा कहना सत्य है; परन्तु मेरी समझ में नहीं आता कि माया कैसे लक्ष्मण की सहायता करेंगी। प्रिये ! पृथ्वी पर मेघनाद की गर्जना से ऐरावत स्थिर हो जाता है और मेरा साहस भाग जाता है। लक्ष्मण महाबली है; परन्तु अजेय मेघनाद के सम्मुख वह क्या है ?"

इन्द्र दुःखित होकर ठंडी सांस लेने लगे। शची-मेनका-उर्वशी आदि निकट आकर मौन अधोमुखी खड़ी हो गईं। तभी मायादेवी सहसा आ उपस्थित हुईं। उनके आने से कक्ष में प्रकाश भर गया। देवेन्द्र सिंहासन त्याग खड़े हो गए। देवी स्वर्णासन पर बैठ गईं।

इन्द्र ने कहा, "माता! अपनी इच्छा मुझ से कहिए।"

"देवराज! मैं लंकापुरी को जाती हूं। देखो, प्रभात हो रहा है। आनन्दमयी उषा उदय-शिखिर पर हंसती हुई निकलेगी। साथ ही लंका का सौभाग्यसूर्य अस्ताचल में डूबेगा। मैं लक्ष्मण को यज्ञागार में ले जाऊंगी और राक्षस दल को मायाजाल में घेर लूंगी, फिर वह निरस्त्र बली देवास्त्रघात से मरेगा; परन्तु जब रावण यह समाचार सुनेगा तो पुत्रशोक में वह विकल होकर यम की भांति युद्ध करेगा। उस समय उससे राम-लक्ष्मण और विभीषण को कौन बचा सकेगा, यह सोच लो?"

"महादेवी! यदि कल मेघनाद मर जाए, तो फिर मैं समस्त सुर-सैन्य लेकर संग्राम में लक्ष्मण की रक्षा करने जाऊंगा। आपके चरण-प्रताप से मैं रावण से नहीं डरता। आप तो उस दुर्द्धर्ष मेघनाद का घात कीजिए, फिर कल मैं स्वयं भूतल पर जाकर वज्र-प्रहार से राक्षसराज को नष्ट कर दूंगा।"

माया ने हंसकर कहा, "यही ठीक है, तो अब मैं लंका चली। स्वप्न-देवी कहां है?"

स्वप्नदेवी ने उपस्थित होकर कहा, "माता की क्या आज्ञा है?"

"तुम वायु की गति से राम के कटक में जाओ और सुमित्रा के रूप में लक्ष्मण के सिराहने बैठकर उससे कहो कि लंका के उत्तर वनराजि के बीच एक सरोवर है, उसके किनारे पर चण्डी का स्वर्णमय मन्दिर है, तुम वहां स्नान कर विविध पुष्पों से दानव-दमनीया की भक्तिभाव से पूजा करो। उनके प्रसाद से ही तुम दुर्मद मेघनाद का वध कर सकोगे।"

"जो आज्ञा!" कह स्वप्नदेवी विलीन हो गई।

माया ने उठते हुए कहा, "अब मैं भी चली।"

उनके जाने पर इन्द्र ने प्रेम से इन्द्राणी का हाथ पकड़कर कहा, "चलो, प्रिये! अब सुख से शयन करें।"

उधर राम-शिविर में राम और लक्ष्मण कुशशय्या पर सो रहे थे। सुभट पहरा लगा रहे थे। एकाएक लक्ष्मण चौंककर उठ बैठे और कहने लगे, "मातेश्वरी! एक बार फिर दर्शन दीजिए, मैं आपकी चरणरज मस्तक पर चढ़ाकर मनोकामना पूर्ण करना चाहता हूं। आपने जो सन्देश दिया, क्या वह सत्य है?"

लक्ष्मण की बात सुनकर राम की भी नींद टूट गई। उन्होंने कहा, "भ्राता लक्ष्मण ! अधीर क्यों हो रहे हो ?"

लक्ष्मण ने उन्हें प्रणाम करके कहा, "महाराज ! मैंने एक अद्भुत स्वप्न अभी देखा है। माता सुमित्रा ने मुझे आदेश दिया कि उठो, प्रभात हो रहा है। लंका के उत्तर कूल पर चण्डी का स्वर्णमन्दिर है। तुम वहां जाओ और सरोवर में स्नान कर देवी की विविध पुष्पों से पूजा करो, तो उनके प्रसाद से तुम दुर्मद मेघनाद का वध कर सकोगे।"

यह सुन राम ने विभीषण को बुलाकर कहा, "मित्रवर ! इस राक्षस-पुरी में तुम्हीं मेरे परम रक्षक हो, कहो अब क्या कहते हो ?"

विभीषण स्वप्न सुनकर कहने लगे, "देव ! इस वन में जो सरोवर-कूल पर चण्डी का मन्दिर है, उसमें राक्षसनाथ स्वयं सती की पूजा करता है। वह एक भयंकर स्थल है, इसलिए वहां कोई नहीं जाता। सुना है, वहां स्वयं त्रिशूली शिव द्वार पर पहरा देते हैं। जो कोई वहां मां की पूजा करता है, वह जयी होता है। यदि वीर सौमित्र उस वन में प्रवेश कर सकें, तो अवश्य मनोरथ में सफल हो सकते हैं।

लक्ष्मण बोल पड़े, "मैं अवश्य वहां जाऊंगा। कौन मेरी गति को रोक सकता है !"

राम ने कहा, "भ्राता ! तुमने मेरे लिए बहुत कुछ सहन किया। अब मैं तुम्हें इस स्थल पर भेजते भय खाता हूं; परन्तु दैव की यही इच्छा है, तो जाओ, सावधान रहना देवता तुम्हारी रक्षा करेंगे।"

लक्ष्मण ने तलवार नंगी कर राम के चरण छूकर कहा, "आप किसी भांति की चिन्ता न करें। मैं अभी देवी का वरदान प्राप्त करके आता हूं।"

रात्रि ढल रही थी, शीतल मन्द समीर बह रही थी। चण्डी के उद्यान के सरोवर में स्वच्छ जल पर बड़े-बड़े कमलपुष्प फूल रहे थे। मन्दिर के द्वार पर त्रिशूली शिव की छाया दीख पड़ती थी। ललाट पर शशिकला, सिर पर जटा-जूट बीच में जाह्नवी की शुभ्ररेख, अंग में विभूति, दाहिने हाथ में विकराल त्रिशूल।

लक्ष्मण वहीं पहुंचकर त्रिशूली शिव की छाया के चरणों में गिरकर बोले, "हे, चन्द्रचूड़ ! त्रिभुवनविख्यात रघुकुलमणि दशरथ का पुत्र यह दास लक्ष्मण आपके चरणों में प्रणाम करता है।"

छाया ने आशीर्वाद दिया, "हे सौभाग्यशाली ! तुम्हारी जय हो।"

लक्ष्मण ने तलवार निकालकर कहा, "प्रभो ! कृपया रास्ता छोड़ दीजिए। मैं कानन में प्रवेश करके चण्डी की पूजा करना चाहता हूं अथवा मुझ दास से युद्ध कीजिए। देवाधिदेव ! मैं विलम्ब नहीं कर सकता। मैं

धम की दुहाई देकर यह निवेदन करता हूं।"

शिव हंस दिए। बोले "सौमित्र ! मैं तुम्हारे साहस की प्रशंसा करता हूं। आज तुमपर प्रसन्नमयी प्रसन्न हैं, फिर मैं कैसे तुम्हारे साथ युद्ध कर सकता हूं ! जाओ पूजा करो।"

यह कहकर शिवमूर्ति अन्तर्धान हो गई। लक्ष्मण आगे बढ़े; परन्तु विकट गर्जन सुन चौंककर क्या देखते हैं कि एक भयानक सिंह पूंछ हिलाता आ रहा है। लक्ष्मण ने तलवार खींच ली; परन्तु सिंह लक्ष्मण की परिक्रमा कर वहां से चला गया। बादल गरजे, बिजली तड़पी भयानक आंधी आई, चारों ओर भीषण नाद उठता रहा। लक्ष्मण वीरता से खड़े यह देखते रहे। फिर आकाश में तारे छिटक आए। फूल खिल उठे। सुगन्धित वायु बहने लगी। बहुत-से कोमल कंठस्वरों से गाने की ध्वनि सुनाई दी। सहसा अनेक सुन्दरियां गीत गाती, बजाती विहार करती दीखने लगीं। कोई सरोवर में स्नान कर रही है, कोई वेणी में मोती गूंथ रही है, कोई वीणा पर अलाप रही है। उन सभी ने लक्ष्मण को घेर लिया।

एक ने हंसकर कहा, "वीरचूड़ामणि ! तुम्हारा स्वागत है। हम सब निशाचरी नहीं, स्वर्ग की अप्सराएं हैं। हम स्वर्ग के नन्दनवन में निवास करती तथा आनन्द से अमृतपान करती हैं। हमारे यौवन-उद्यान में सदा नववसन्त रहता है। हमारी अधर-सुधा कभी नहीं सूखती, हम अमर-अक्षय-यौवन देववालाएं हैं। हम तुम्हें पतिरूप में वरना चाहती हैं। हमारे साथ चलो। जिस सुख-भोग के लिए मनुष्य युग-युग तपस्या करता है, वही आज हम तुम्हें देना चाहती हैं। हम तुम्हें उस आनन्द-जगत में ले जाएंगी, जहां रोग-शोक रूपी कीड़ा जीवन के पुष्प को नष्ट नहीं कर सकता।"

लक्ष्मण हाथ जोड़कर बोले, "देवबालावृन्द ! मुझ दास को क्षमा करें। मेरे ज्येष्ठ भ्राता राम की भार्या वैदेही को वन में अकेली पाकर राक्षसराज रावण हर लाया है। मुझे घोर युद्ध में उसका नाश करके जानकी का उद्धार करना है। मुझे आप ऐसा वर दीजिए कि मेरा प्रण पूरा हो। मैं नरकुल में जन्मा हूं। आप देवबालाएं मेरी माता के समान हैं।"

लक्ष्मण के इतना कहते ही चमत्कार हुआ। एकाएक सब गायब हो गईं। सम्मुख सरोवर देवी का मन्दिर दीख पड़ा। लक्ष्मण ने सरोवर में झटपट स्नान कर नीलोत्पल के फूल ले देवी के चरणों में चढ़ाकर साष्टांग प्रणाम किया। अकस्मात् सैकड़ों दीपावली से मन्दिर जगमगा उठा। झांझघण्टे बज उठे। गन्ध से दिशाएं सुवासित हो गईं। देवांगनाएं देवी की स्तुति में गान करने लगीं।

लक्ष्मण ने प्रार्थना की, "वरदे ! मुझ दास को ऐसा वर दीजिए कि मेघनाद का नाश कर सकूं। आप अन्तर्यामिनी हैं, इस दास के मन की समस्त इच्छाओं को पूर्ण करके यशस्वी कीजिए।"

लक्ष्मण नेत्र मूंद प्रणाम करने लगे। तभी गर्जन का शब्द हुआ। मन्दिर हिलने लगा, मूर्ति के स्थान पर साक्षात् मायादेवी सहस्र बिजलियों का प्रकाश लिए प्रकट हुईं। लक्ष्मण चकाचौंध हो घबरा गए।

माया ने हंसकर कहा, "रे, सुमित्रासुत ! अभय हो, सदाशिव के आदेश से मैं स्वयं तेरी सहायता को आई हूं। इन्द्र ने तुझे देवास्त्र भेज दिए हैं। उन्हें धारण करके विभीषण के साथ झटपट यज्ञागार में जा। वहां मेघनाद वैश्वानर की पूजा कर रहा है। व्याघ्र की भांति उस पर सहसा आक्रमण करके मार डाल। मैं माया से तुम दोनों को अदृश्य कर दूंगी, जैसे म्यान में तलवार दबी रहती है। जा, निर्भय चला जा। आज सूर्योदय से प्रथम ही राक्षसकुल का सूर्यास्त हो जाएगा।"

यह कह माया लक्ष्मण को आशीर्वाद दे अन्तर्लीन हो गईं। लक्ष्मण प्रणामकर लौट आए। उषा उदित हो रही थी। राम सब सेनानायकों सहित व्याकुल बैठे थे। तभी लक्ष्मण पुष्पमाला धारण किए आ पहुंचे। राम ने उन्हें गले से लगा लिया।

लक्ष्मण ने सब घटनाएं बताकर कहा, "आपके चरणों के प्रताप से मुझे साक्षात् महामाया ने प्रकट होकर कहा है कि तुम मेघनाद पर सहसा आक्रमण करो। वह जहां यज्ञ कर रहा है, वह स्थान देवी ने बता दिया है। देवी स्वयं मुझे और राक्षसराज विभीषण को अदृश्य कर देंगी। अब प्रभात हो रहा है, विलम्ब का समय नहीं। आप हमें जाने की अनुमति दीजिए।"

"भ्राता ! जिसे देखकर यमदूत भी व्याकुल होते हैं, उसके सम्मुख अकेला कैसे जाने दूं ? जिस विषधर के विष से देव और नर तुरन्त भस्म हो जाते हैं, उसके बिल में तुझे मैं कैसे भेज दूं ? सीता के उद्धार का कोई प्रयोजन नहीं है। मैंने व्यर्थ ही समुद्र पर पुल बांधा, व्यर्थ ही शत्रु-मित्र के रक्त की नदी बहाकर पृथ्वी को रंगा। हाय ! भाग्यदोष से मैंने राजपाट, माता-पिता-बन्धु-बान्धव सबको खोया। इस अन्धकारमय जीवन में सीता दीपशिखा थी। दुरादृष्टि ने उसे भी बुझा दिया। अब तुम्हीं मेरी एकमात्र आशा हो, तुम्हें नहीं खोऊंगा। चलो, वन को लौट चलें।"

लक्ष्मण ने दर्प से कहा, "आप इतनी चिन्ता क्यों करते हैं ? लंका पर दैव कुपित हैं, उनका क्रोध प्रलय के बादलों के समान उसे घेर रहा है और आपका कटक देवहास्य से उज्ज्वल हो रहा है। आप तुरन्त आज्ञा

दीजिए कि मैं देवास्त्र धारण करके शत्रु का हनन करूं।"

विभीषण खड़े यह सब सुन रहे थे। वे बोले, "राघवेन्द्र! सौमित्र का कथन सत्य है। मुझे स्वप्न में राक्षसकुललक्ष्मी ने प्रकट हो लंका का राजतिलक दिया है और सौमित्र की सहायता का आदेश दिया है। सो रघुवीर! आप निर्भय हमें देवाज्ञा पालन करने दीजिए।"

राम ने आर्द्र होकर कहा, "प्रिय मित्र! जब मैंने पिता की प्रतिज्ञा को पूरा करने हेतु राज्य त्याग वनवास-ग्रहण किया था, तब लक्ष्मण ने तरुण यौवन में सब सुखों को तिलांजलि देकर मेरे पीछे स्वेच्छा से वनवास स्वीकार किया था। माता सुमित्रा ने कहा था, "हे राम! तुमने न जाने किस कौशल-बल से मेरे नयनमणि का हरण किया है। तुम्हें यह धन सौंपती हूं और भिक्षा मांगती हूं कि इसे अत्यन्त यत्न से रखना। सो, अब मैं इस भ्रातृरत्न को कैसे घोर संकट में डालूं? बन्धुवर! मैं सीता का उद्धार करना नहीं चाहता, मैं वन को लौट जाऊंगा।"

राम का यह भ्रातृप्रेम देखकर आकाशवाणी हुई, "राम! देवाज्ञा का उल्लंघन मत करो। लक्ष्मण आज अवश्य मेघनाद को मारेगा।"

आकाशवाणी की ओर राम ने धीरे से मस्तक नवा दिया फिर कहा, "जैसी देवाज्ञा! लाओ देवास्त्र, मैं अपने हाथ से भ्राता को अस्त्र धारण कराऊंगा।"

राम ने अपने हाथों लक्ष्मण को अस्त्रों से सजाया। छाती पर कवच, कमर में तलवार, पीठ पर ढाल, हाथ में अक्षय तूणीर, मस्तक पर लौह शिरस्त्राण सजाकर उन्हें आशीर्वाद दिया।

लक्ष्मण बायें हाथ में दिव्य धनुष लेकर बोले, "आशीर्वाद दीजिए कि मैं आज दुर्निवार शत्रु का संहार करूं।"

"भ्राता! जैसे पीठ दिखाते हो वैसे ही मुख दिखाना।" फिर उन्होंने विभीषण से कहा, "मित्र! आज मेरा जीवन-मृत्यु तुम्हारे हाथ है।"

"आप चिन्ता न कीजिए प्रभु!" कहकर विभीषण लक्ष्मणसहित चल दिए।

छः

अशोक वन में मलिनवदना शोकाकुल सीता पृथ्वी पर बैठी हुई थीं। दो-तीन चेरियां उन्हें छेड़ रही थीं।

एक ने सीता को सुनाते हुए जोर से कहा, "अरी, आज तो कनकलंका में घर-घर आनन्द-सागर कल्लोल कर रहा है। बाजे बज रहे हैं, नर्तकियां

नाच रही हैं, गायक गा रहे हैं नायक-नायिकाएं आनन्द क्रीड़ा कर रहे हैं, द्वार-द्वार पर फल-फूलों से गुंथी हुई मालाएं लटक रही हैं नवीन ध्वजाएं फहरा रही हैं। राजपथ में जनस्रोत कल्लोल करता जा रहा है। निद्रादेवी घर-घर घूमती हैं; पर उसकी कोई बात भी नहीं पूछता।"

दूसरी ने पूछा, "क्यों री, क्यों ? इस आनन्द-उत्सव का कारण क्या है ?"

"अरी, वीरेन्द्र इन्द्रजीत कल राम को मारेगा। लक्ष्मण का वध होगा। राक्षस दल वैरी दल को समुद्र के पार भगा देगा। लंका के वीर विभीषण को बांध लाएंगे। अरी, बड़ा आनन्द होगा। चल, तनिक नगर की बहार तो देख आयें।"

"चलो, सब चलें, इस आनन्द की वेला में इस भाग्यहीन बन्दिनी के आंसू देखने को हम यहां क्यों रहें ?" यह कहकर सब वहां से उठ गईं।

सीता आंसू बहाकर रोने लगीं, "हाय ! ये सब कैसी निष्ठुर हैं ! न जाने विधाता ने क्या विचारा है ? क्या सत्य ही कल प्रलय होने वाली है ? अरे, ये प्राण फिर किस आशा में अटके हैं ?"

कुछ समय बाद सूरमा चेरी ने आकर कहा, "देवी ! दुष्टा चेरियां तुम्हें अकेली छोड़कर महोत्सव देखने चली गयीं ? आज्ञा दो तो मैं तुम्हारे ललाट पर सौभाग्य-चिह्न अंकित कर दूं। तुम सौभाग्यवती हो, तुम्हारा यह वेश क्या अच्छा लगता है ?"

उसने आंचल से सिन्दूर की डिबिया निकालकर सीता की मांग में सिंदूर लगाया, फिर चरण छूकर कहा, "देवी ! इस देवांकित शरीर के स्पर्श करने के लिए मुझे क्षमा करो, यह चेरी इन चरणों की चिरदासी है। राक्षसराज ने आपको बहुत कष्ट दिया है।"

सीता आंसू पोंछकर बोली, "बहन ! तुम वृथा ही रावण को दोष देती हो। मैंने तो स्वयं ही आभूषणों को हरण के समय मार्ग में फेंक दिया था। वे ही रघुनाथ को यहां तक ले आये हैं।"

"हे, देवी ! बताओ तो सही, रघुकुलमणि तुम्हारे जैसी कुसुमकली को लेकर वन में क्यों आए थे और इस चोर राक्षस ने किस कौशल से तुम्हारे वीर पति और देवर के रहते तुम्हारा हरण किया ?"

"अरी, बहन ! इस दुखिया की दुःखकथा सुनकर क्या करोगी ? जैसे ऊंचे वृक्ष में घोंसला बनाकर कबूतर और कबूतरी सुख से रहते हैं, उसी भांति हम गोदावरी के तीर पर पंचवटी में आनन्द से वास करते थे। वीर सौमित्र नित्य कन्द-मूल-फल लाते थे। प्रभु कभी मृगया नहीं करते थे। हिंसा-विरत रहते थे। उनके चरणों के निकट रहकर मैं राजसुख

बिलकुल भूल गई थी। हमारे कुटी के बाहर सदैव वसन्त खिला रहता था। कोयल कुहू-कुहू करके प्रातःकाल मुझे जगाती थी। द्वार पर मोर-मोरनी नाचा करते थे। नित्य हाथी-हथिनी, मृगशिशु क्रीड़ा किया करते थे। इन सबमें मेरा मन रम गया था। मैं सब वनचरों की सेवा किया करती थी। पम्पा सरोवर के बड़े-बड़े पद्मों को मैं अपने केशों में लगाती थी तो प्रभु हंसकर मुझे वनदेवी कहकर पुकारते थे। हाय सखी ! क्या अब फिर उनका मुखचन्द्र देखने को न मिलेगा ?"

"देवी ! यदि पूर्वकथा-स्मरण से दुःख होता है, तो मत कहो। तुम्हारे आंसू देखकर तो मेरे प्राण निकलते हैं।"

"अरी, यह अभागिन न रोयेगी तो कौन रोयेगा ? ऋषि-पत्नियां कभी-कभी मेरी कुटी में आती थीं, तो ऐसा प्रतीत होता था, मानो अन्धकार में चन्द्रिका उदय हुई। प्रभु की मधुर वाणी संगीत की भांति कानों में भरी रहती है। हे, निष्ठुर विधि ! क्या वह संगीत-सुधा एक बारगी ही विलुप्त हो गई ?"

'सती सीते ! तुम्हारी बात सुनकर राजभोग से घृणा उत्पन्न होती है। देवी ! यह राक्षस कैसे तुम्हें हर लाया, यह भी तो कहो ?"

हमारे सुख के दिनों में निर्लज्जा शूर्पणखा ने विपत्ति ला उपस्थित की। अब उन बातों को कहने में लज्जा आती है। वह बाघिनी जब मुझे मारने दौड़ी, तब सौमित्र ने तिरस्कार कर उसे भगा दिया। इसपर वह राक्षसों को बुला लाई। भीषण युद्ध हुआ। मैं तो कुटी में अचेत हो गई थी। शत्रु को विजयकर जब प्रभु ने अपने स्पर्श से मुझे जगा हंसकर कहा, हेमांगी ! तुम इस शय्या पर शोभित हो प्रिये ! उठो। अरी, क्या वह मधुर ध्वनि मैं फिर सुन सकूंगी ?"

"देवी ! अब मत कहो, आपका इतना कष्ट नहीं देखा जाता।"

"नहीं, अब सुनो। मारीच का छलना तुमने सुना ही है। जब मैंने मूढ़तावश राघव को और बाद में लक्ष्मण को भी कटु वाक्य कहकर उस स्वर्ण मृग के पीछे भेज दिया, तो क्या देखती हूं कि अग्नि के समान तेजस्वी तपस्वी खड़े हैं। मैं क्या जानती थी कि यह फूल में कालकीट है। मैंने भूमि पर सिर रखकर उसे प्रणाम किया। उसने कहा, रघुकुलवधू ! भिक्षा दो, मैं क्षुधार्थ अतिथि हूं। मैंने उसे आसन दे, राघव के आने तक बैठने को कहा; पर वह रुष्ट होकर जाने लगा। तब मैंने अधर्म के भय से कुटी के बाहर भिक्षा देने को ज्यों ही हाथ बढ़ाया कि उसने कालपाश की भांति मुझे पकड़कर उठा लिया और विद्युत-गति से ले भागा। मैं रक्षा करो, रक्षा करो। चिल्लाने लगी। उस समय समस्त वन क्षुब्ध हो उठा; पर

वह निर्दयी राक्षस न पिघला। अरी, जो लोहा तेज आंच पर पिघलता है, उसे क्या वारिधारा गला सकती है ? उस दुष्ट ने कभी रोष से गरजकर, कभी मृदुस्वर में जो मुझसे कहा, वह मैं क्या कहूं। मैं निरुपाय हो अपने आभरण उतारकर वन में फेंकने लगी।"

"हाय देवी ! वज्रहृदय ने तुम्हें बड़ा दुःख दिया।"

"हाय ! मेरा विलाप किसी ने न सुना। उसका कनकरथ गिरिशृंग, नद, वन और नाना देशों को पार करके वायुवेग से बढ़ चला। एकाएक रथ रुका, मैंने देखा, सामने पर्वत पर प्रलयकाल के मेघ के समान कोई भैरव मूर्ति खड़ी ललकार रही थी कि अरे दुर्मति चोर, मैं तुझे पहचानता हूं, तू किस कुलवधू को चुराए लिए जा रहा है ? सखि ! क्षण-भर में ही दोनों वीरों में भयानक युद्ध हुआ। मैंने भागने का भी प्रयत्न किया; पर मैं मूर्च्छित हो गई। मूर्च्छा भंग होने पर देखा, वह वीर मुमूर्षु अवस्था में धरती पर पड़ा है, और राक्षस दर्प से गरज रहा है। वीर ने मरते-मरते कहा, अरे लोभी, शृगाल ! तूने सिंहिनी पर आक्रमण किया है। देख, तू कैसे बचता है। इतना कहकर वह मौन हो गया। मैंने हाथ जोड़कर कहा, हे देव ! इस दासी का नाम सीता है, मैं जनक-दुहिता और रघुकुलवधू हूं। राघव से यदि साक्षात् हो तो उनसे कहना कि पापी रावण छल से मुझे हरण कर ले गया है। इसके बाद ही इस निर्दयी ने उठाकर मुझे रथ में डाल लिया।"

"जैसे व्याघ्र हरिणी को जाल में फांस लेता है।"

"हां, उसी प्रकार। रथ आकाश में वायुवेग से बढ़ चला। सामने नील सागर दीख पड़ा, मैंने गिरना चाहा, परन्तु दुष्ट ने गिरने भी न दिया। कनक-लंका मुझे प्रथम बार ऐसी प्रतीत हुई, जैसे सागर के भाल पर रक्त-चन्दन की रेखा सुशोभित हो। सखी ! इस स्वर्णपिंजर में मुझ निरीह बन्दिनी को उसने बन्द कर दिया। सो, मैं राजकुल-नन्दिनी और राजवधू होकर कारागार में बद्ध हूं।"

"देवी ! धीरज धरो। अच्छे दिन आने वाले हैं। वीरयोनि लंका में सुभट नहीं रहे। त्रिभुवन-विजयी योद्धाओं की लाश सागर तट पर गिद्ध और शृगाल खा रहे हैं। लंका में घर-घर विधवाएं विलाप कर रही हैं। तुम्हें बड़ा क्लेश मिला है; परन्तु अब उसका अन्त होगा। देवी इस दासी को मत भूलना।"

"मेरी परम हितैषिणी सखी ! तुम्हारे वचन सत्य हों। सीता कंगालिनी है और तुम रत्न हो, क्या कंगालिनी रत्न पाकर उसकी उपेक्षा करेगी ?"

सात

उषा का उदय हुआ। इन्द्रजीत के शयनागार में मधुर भैरवी-नाद हो रहा था। भांति-भांति के पक्षी कलरव कर रहे थे। वन्दीगण विविध वाद्य बजाकर गान कर रहे थे। मेघनाद की आंख खुली, देखा सुलोचना अभी सो रही है। उसने सोयी हुई पत्नी का हाथ पकड़कर मृदुस्वर में कहा, "उठो, हेमवती ! उषा की प्रतिमूर्ति देखो ! प्राची दिशा उषा के उदय से कैसी दीप्तिमान हो रही है। उठकर देखो तो प्रिये ! ये वनकुसुम तुम्हारी शोभा को हरणकर झूम-झूमकर डालों पर हंस रहे हैं।"

प्रियतम के प्रिय वचन सुन सुलोचना जाग पड़ी। उसने लज्जा से वस्त्रों को ठीक करके हंसकर कहा, "आज इतनी जल्दी प्रभात हो गया। नाथ ! वह सुखरात्रि इतनी शीघ्र विलीन हो गई ?"

"प्रिये ! तुम मेरे भाग्यवृक्ष की उत्तम फल हो। तुम मेरे प्राणरूपी सूर्यकांतमणि के लिए तेजोरश्मिरूप हो। अब चलो, विलम्ब का समय नहीं। जननी के पद में प्रणाम कर वैश्वानर की विधिवत् पूजाकर कठिन संग्राम में जाऊंगा। प्रिये ! आज मैं प्रबल बैरी का समर में हनन करूंगा।"

उसने त्रिजटा दासी को बुलाकर कहा, "अरी, त्रिजटे ! देख तो माता क्या कर रही हैं ? उनसे निवेदन कर कि पुत्र व वधू उनकी चरण वन्दना के लिए उपस्थित होना चाहते हैं।

त्रिजटा साष्टांग प्रणाम करके बोली, "युवराज ! महिषी मन्दोदरी शिव मन्दिर में जागरण और उपवास करके आपकी मंगलकामना कर स्वयं ही देवप्रसाद लिए यहां आ पहुंची हैं।"

मन्दोदरी ने वहां आकर हर्ष से दोनों के मस्तक चूमे। नेत्रों से प्रेम की अश्रुधारा बह चली। वह बोली, "वीर पुत्र और पुत्री ! चिरंजीव रहो।"

मेघनाद ने प्रणाम करके कहा, "माता ! मुझ दास को आशीर्वाद दो। मैं आज पामर भ्रातृघाती राम का वध करूंगा। लंका को निर्विघ्न कर शत्रु को बांध लाऊंगा और उसके कटक को अतल सागर के जल में डूबो दूंगा।"

"पुत्र ! तू मेरे हृदय-आकाश का पूर्णशशि है। तुझे भेजकर इस अंधकार में कैसे रहूं ! अरे, दैवबलयुक्त राम, दुरंत लक्ष्मण तथा दयाशून्य विभीषण विपक्ष में हैं। जैसे क्षुधा से व्याकुल व्याघ्र अपने शिशु को खा जाता है, वैसे ही यह राज्यलोलुप राक्षस अपने वंश का नाश कर रहा है।"

मेघनाद ने हंसकर कहा, "मां ! तुम उन दोनों भिक्षुकों से क्यों डरती

हो ? तुम्हारे पद-प्रसाद से यह दास देव, दैत्य और नर सबको युद्ध में सदा जीतता रहा है। इन्द्र भी भय से सुख-नींद नहीं सोता। पाताल में नागेन्द्र और पृथ्वी पर नरेन्द्र मेरे नाम से थर्राते हैं।"

"पुत्र ! राम मायावी है। वह मरकर भी जी उठता है। देव उसके सहायक हैं। अरे, शिला उसके आदेश से जल में तैरती है। अग्नि बुझ जाती है। हाय सूर्पणखा ! मां के उदर ही में तू क्यों न मर गई ?"

"माता ! अग्नि लगने पर कौन घर में सोता रहेगा ? शत्रु नगर को घेरे पड़े हैं, मैं कैसे विरत हो सकता हूं ? मुझे इन्द्रजीत के रहते क्या राक्षसकुल भयभीत रहेगा ? प्रभात होने लगा है, पक्षी वन में बोल रहे हैं। अब आज्ञा दीजिए माता।" मन्दोदरी आंसू पोंछकर बोली, "अब क्या कहूं ? इस कालरण में विरूपाक्ष तुम्हारी रक्षा करेंगे।" फिर सुलोचना से कहा, "वधू ! तुम मेरे साथ रहो, तुम्हीं को देखकर ये दग्ध प्राण शीतल रहेंगे।" यह कह और आशीर्वाद देकर मन्दोदरी चल दी।

मेघनाद ने पत्नी से कहा, "प्राणसखि ! अब तुम भी माता के पास जाओ। मैं पैदल ही यज्ञशाला में जाऊंगा और समर में विजयी हो शीघ्र लौटूंगा।"

"नाथ ! जैसे शशिकला रवि के तेज से उज्ज्वल होती है, उसी भांति यह दासी भी है। आपके बिना तो यह जगत् अन्धकार-मात्र है।"

"प्रिये ! मैं शत्रु का नाश करके शीघ्र लौटूंगा। कितना प्रकाश फैल गया है, दिन उदय हो रहा है ! अनुमति दो प्रिये ! मैं जाऊं !"

यह कहकर मेघनाद चल दिया। सुलोचना दो पग बढ़ आकाश की ओर हाथ उठाकर प्रार्थना करने लगी, "हे देवी, कृपामयी ! लंका पर दया करना, विग्रह में राक्षसकुल-सूर्य की रक्षा करना, अपने अभेद्य कवच से शूर को आवृत करना। हे देवी ! इस छिन्न लता का आश्रय यही तरुराज है। जगदम्बे ! उसे कुठार स्पर्श न कर सके।"

उधर कैलास धाम में जगदम्बा पार्वती स्वर्णसिंहासन पर बैठी कुछ विचार रही थीं कि उनका सिंहासन हिल उठा। सदन सुलोचना के क्रन्दन से भर गया, जिसे सुनकर जया-विजया विचलित हो उठीं।

जया ने कहा, "देवी ! आपकी दासी सुलोचना बहुत व्याकुल हो रही है। उस पर आपको दया न आ जाए, इससे इन्द्र भयभीत हो गया है।"

अम्बिका ने उत्तर दिया, "जया ! तुम्हारा कहना सत्य है। सती सुलोचना ने मेरे अंश से जन्म लिया है। इन्द्रजीत स्वयं अपने तेज से जगत् जयी है, फिर सती का तेज भी उससे मिल गया है; परन्तु वैदेही का दुःख तो देखा नहीं जाता। आज मैं अपना तेज हरण करूंगी। जैसे दिनान्त में

सूर्यमणि आभाहीन हो जाती है, उसी भांति उसे भी निस्तेज होना पड़ेगा। आज लक्ष्मण अवश्य जयी मेघनाद का वध करेगा और सुलोचना अपने वीर पति के साथ यहां आयेगी। रावणि यहां आकर सदाशिव की सेवा करेगा और सुलोचना को मैं अपनी सखी बनाकर सन्तुष्ट करूंगी।"

आठ

प्रभात की उषा का उदय हुआ। लंका के चतुष्पथ पर राजप्रासाद के प्रांगण में राक्षस सेना सज्जित होने लगी। धौंसे बजने लगे। हाथी, घोड़े, पैदल खड़े हो गये। सेनानायक सबको आज्ञा प्रदान करने लगे। विरूपाक्ष तालजंघ सेनापति ने सेना का व्यूह निर्माण किया, रथों की पंक्तियां अलग खड़ी की गयीं। खिड़कियों से कुलवधू सैनिकों पर पुष्प और लाजा वर्षा करने लगीं। हाथी चिंघाड़ने लगे। मन्दिरों में प्रभाती बजनी आरम्भ हो गई। तोरण पर भैरवी अलापी जा रही थी। पुरवासी लोग इधर-उधर आ-जा रहे थे। चार राक्षस नागरिक चतुष्पथ पर खड़े होकर परस्पर बातें करने लगे।

एक बोला, "चलो, जल्दी करो, प्राचीर पर चढ़ जाएं, जिससे आज का अद्भुत युद्ध देखने को मिल जाए, फिर स्थान नहीं मिलेगा।"

दूसरे ने कहा, "अभी ठहरो, युवराज वैश्वानर की पूजा में रत हैं। वे अभी आकर समस्त सैन्य का निरीक्षण करेंगे। देखते नहीं, महानायक तालजंघ कैसी तत्परता से व्यूह रचना कर रहे हैं!"

तीसरे ने कहा, "आज भिक्षुक राम का निस्तार नहीं है। महाराज विभीषण भी अपने कर्मफल को आज भोगेंगे।"

चौथे ने कुछ सोचकर कहा, "अरे, मायावी राम तो मरकर भी जी उठता है। देवगण उसके पक्ष में हैं।"

पहले ने उत्तर दिया, "तो क्या हुआ? देवराज इन्द्र के वज्र को व्यर्थ करने वाले युवराज आज कालपुरुष की भांति देवताओं का सब प्रयत्न व्यर्थ करेंगे। चलो प्राचीर पर चलें।"

"प्राचीर पर चढ़कर क्या होगा? युवराज तो पल-भर में ही राम-लक्ष्मण का नाश कर डालेंगे। पृथ्वी पर कौन है जो उनके भीषण बाण से बच सके?"

"सत्य कहते हो, जैसे अग्नि सूखी घास को भस्म करती है, उसी भांति युवराज शत्रु का संहार करते हैं। उन-सा योद्धा पृथ्वी पर और कौन है?"

"देखते रहो, एक मुहूर्त में वह अधम विभीषण को बांधकर ले आते

हैं, फिर उसका यातनापूर्वक वध होगा।"

"अहा, रक्षीवर रावण धन्य है ! वह जगत् में महिमा का समुद्र है ! अरे, पृथ्वीतल पर ऐसा वैभव किसका है ?"

"किन्तु इस भिखारी राम ने रत्नमयी लंका को विधवा-सी बना दिया है। देखो, पर्वत के समान कुम्भकर्ण महाराज समरभूमि में मरे पड़े हैं। इसकी कौन कल्पना कर सकता था !"

"देखो, ये लंका के प्रासाद हेमकूट की शृंगावली की भांति आकाश का चुम्बन कर रहे हैं। खिड़कियों में हाथी दांत की चौखट पर स्वर्णद्वारों में निहित वीरों की म्लानवदना राक्षसवधुएं अश्रुपूर्ण नेत्रों से सेना की ओर देख रही हैं।"

"निःसन्देह लंका के समान वैभव इस लोक में नहीं; परन्तु संसार में कोई पद चिरस्थाई नहीं। सागर-तरंग की भांति एक वस्तु आती और दूसरी जाती है। चलो, भाई ! प्राचीर पर चलें। देखो, समस्त प्राचीर पर नरमुण्ड ही नरमुण्ड दीख रहे हैं।"

बलिष्ठ राक्षस प्रहरियों से आरक्षित निकुम्भला यज्ञागार में अकेला मेघनाद रेशमी वस्त्र धारण किए कुशासन पर बैठा यज्ञ कर रहा था। भाल पर चन्दन की बिन्दी और गले में फूलों की मालाएं। धूपदान में धूप जल रही थी। घृत के एक सहस्र दीप जल रहे थे। पुष्पों की ढेरियां रखी हुई थीं। पात्रों में गंगाजल भरा था। सम्मुख स्वर्णघण्ट और विविध रत्न पात्रों में पूजा सामग्री रखी हुई थी। रथीन्द्र मन्त्रपाठ करके आहुति देने लगा। हठात लक्ष्मण हाथ में नंगी तलवार लिए वहां प्रविष्ट हुए। शस्त्रों की झनझनाहट से मेघनाद चौंक उठा। सौम्यमूर्ति लक्ष्मण को देखकर वह अग्निदेव का भ्रम कर उठ खड़ा हुआ।

मेघनाद ने साष्टांग प्रणाम करके कहा, "हे अग्निदेव ! यह दास आज आपकी पूजा कर रहा है। क्या इसीलिए इस रूप में प्रकट होकर आपने लंकापुरी को पवित्र किया है ? हे, देव ! आपको प्रणाम है।"

उसने पृथ्वी पर गिरकर लक्ष्मण को प्रणाम किया। लक्ष्मण बोले, "सावधान रावणि ! मैं अग्निदेव नहीं, तुम्हारा चिरशत्रु लक्ष्मण हूं। मैं अभी तुम्हारा वध करूंगा।" यह कहकर लक्ष्मण तलवार उठाकर आगे बढ़े।

मेघनाद भयभीत तथा विस्मित होकर बोला, "तुम लक्ष्मण हो ? तब कहो, किस कौशल से इस शत्रुपुरी में घुस आए ? इस पुरी की प्राचीर दुर्लंघ्य है। असंख्य योद्धा चक्रावली के रूप में प्राचीर भ्रमण कर रहे हैं। द्वार पर यक्षपति को विजय करने वाले सहस्रों योद्धा रक्षक हैं। इस पृथ्वी

पर देव और मनुष्य योनि में ऐसा कौन जन्मा है, जो अकेला इस राक्षस वृन्द को रण में जय करे। कहो, वीर ! किस माया से तुमने सबको छला ? नहीं-नहीं, तुम अवश्य भगवान वैश्वानर हो, इस दास को प्रवंचना से मुक्त कर वर दो कि मैं राम का वध करके लंका को निःशंक करूं। देखो, सेनाएं शृंगीनाद कर रही हैं। अब विलम्ब नहीं कर सकता।"

लक्ष्मण ने क्रोध से कहा, "अरे, दुर्दान्त रावणि ! मैं तेरा काल हूं। आयुहीन जन को काटने के लिए धरती फाड़कर सांप निकल आता है। मूढ़ तू देवबल से बली होकर सदा देवकुल की अवहेलना करता रहा, सो आज तेरा मैं यहीं हनन करूंगा।" वे तलवार ले आगे बढ़ आए।

मेघनाद ने पीछे हटकर कहा, "तब ठहरो, यदि तुम सत्य ही रामानुज लक्ष्मण हो, तो मैं अभी तुम्हारी युद्ध की इच्छा पूर्ण करूंगा। हे, वीर ! तुम इस धाम में प्रथम बार आए हो, इसलिए शत्रु होने पर भी मेरे अतिथि हो। क्षण-भर मेरा आतिथ्य ग्रहण करो। मैं तनिक वीरसाज सज लूं, अस्त्र ले लूं।"

लक्ष्मण ने गरजकर कहा, "अरे, बाघ के जाल में आ जाने पर क्या किरात उसे छोड़ देता है ? मैं तेरा इसी भांति निरस्त्र वध करूंगा।"

मेघनाद भी क्रोधित हो उठा। बोला, "अरे, क्षत्रिय कुलकलंक ! निरस्त्र अरि पर आघात करना रघुकुल की मर्यादा नहीं। तूने चोर की भांति मेरे मन्दिर में प्रवेश किया है, इसलिए ठहर, मैं तुझे चोर की भांति दण्ड दूंगा।"

मेघनाद ने शृंगपात्र उठाकर जोर से लक्ष्मण के सिर पर दे मारा। चोट खाकर लक्ष्मण मूर्च्छित होकर गिर पड़े। मेघनाद उनकी तलवार, धनुष आदि उठाने लगा; पर उठा नहीं सका। द्वार पर भीमकाय शूल हाथ में लिए विभीषण खड़े थे। उन्हें देखकर मेघनाद ने कहा, "आहा, अब इतनी देर में समझा कि लक्ष्मण ने किस भांति इस पुरी में प्रवेश किया। तात ! आपको धिक्कार है, अरे, सती निकषा आपकी माता, दशानन आपका सहोदर और महापराक्रमी कुम्भकर्ण आपका भाई है। यह दास आपका भ्रातृपुत्र इन्द्रविजयी है। अपने घर का द्वार चोर को दिखलाते हैं ? क्या कहूं, आप पितृतुल्य गुरुजन हैं। कृपाकर द्वार छोड़िए, मैं अस्त्रागार में जाऊंगा। आज यहीं इस रामानुज को यमपुरी भेजकर लंका के कलंक को दूर करूंगा।"

विभीषण ने उत्तर दिया, "वीर ! तुम्हारा अनुरोध वृथा है। मैं राम का दास हूं।"

"पितृव्य! आपकी बात सुनकर मैं लज्जित हुआ। हाय, आप राम

के दास ! यह शब्द आपके मुख से कैसे निकला ! अरे, कहां आप महाकुल में जन्मधारी और कहां अधम राम ! मैं तो मूर्ख हूं, परन्तु आप विद्वान हैं। लक्ष्मण क्षुद्र है, इसी से वह निरस्त्र योद्धा को संग्राम के लिए निमंत्रित करता है। हटिये, मुझे शस्त्र ले आने दीजिए। देखूंगा, आज कौन-सा देवबल रामानुज को मेरे हाथ से बचाता है।"

"प्रिय ! तुम व्यर्थ मुझपर दोषारोपण करते हो। रावण अपने कर्म-दोष से लंका को डुबो रहा है लंका पाप से परिपूर्ण है। वह काल-सलिल में डूब रही है। मैंने आत्मरक्षा के लिए राम का आश्रय लिया है।"

मेघनाद ने गरजकर कहा, "आप जगत में धर्मपथगामी विख्यात हैं; पर किस धर्म के मत से आपने भ्रातृत्व और जातित्व को तिलांजलि दी है ? सच है, जिसकी सगति नीच है, वह दुर्मति नीच क्यों न हो। हटिये, द्वार छोड़िए।"

यह कहकर वह बलपूर्वक आगे बढ़ने लगा। इसी समय लक्ष्मण की चेतना लौट आयी। वे तुरन्त खड़े होकर मेघनाद पर बाण-सन्धान कर लगातार बाण वर्षा करने लगे। बाणों से विद्ध होकर मेघनाद के शरीर से रक्त की धारा बह निकली। मेघनाद ने व्यथा से चीकार करके कहा, "अरे अधम चोर ! ठहर !" यह कहकर वह यज्ञ के पात्र, घण्टा आदि उठा-उठाकर जल्दी-जल्दी लक्ष्मण पर फेंकने लगा। लक्ष्मण ने तेजी से बाण वर्षा कर मेघनाद को सर्वत्र क्षत-विक्षत कर दिया। वह बचने को इधर-उधर दौड़ता ; परन्तु बाण वर्षा विकट थी। सहसा मन्दिर में उज्ज्वल प्रकाश का उदय हुआ। स्वयं यमराज दण्ड हाथ में लिए महिष पर सवार दीख पड़े। उन्हें देख मेघनाद ने कहा, "हाय ! अब मैं ऐसे मरता हूं, जैसे चन्द्रमा राहु के ग्रास से अथवा सिंह जाल में फंसकर।" यह कहते ही वह पृथ्वी पर गिर पड़ा।

लक्ष्मण धनुष छोड़ तलवार लेकर बोले, "मर रे अधम ! मर, देवताओं के शत्रु मर, पृथ्वी को अशान्त करने वाले मर।" उन्होंने बारम्बार आघात किए, जिससे मेघनाद रक्त से लथपथ हो छटपटाने लगा। इसी समय पृथ्वी डोल गई। दिशाएं अन्धकार से पूर्ण हो गईं और प्रलय के समान भयानक घोर रव होने लगा।

मेघनाद ने लक्ष्मण से कहा, "अरे, वीराधम ! पामर ! मुझे मृत्यु का शोक नहीं, पर तेरे आघात से मेरी मृत्यु हुई, इस का बड़ा शोक है। अरे, नराधम ! राक्षसराज जब यह सुनेंगे, तो उनसे तेरी रक्षा कौन करेगा ? हे पिता ! हे माता ! अपने चरणों से विदा करो। सती सुलोचने ! विदा ! चिर विदा !"

मेघनाद की आंखों से अश्रुधारा और शरीर से रक्तधारा बह निकली। कुछ क्षण बाद ही उसके प्राण निकल गए। मेघनाद को प्राणहीन देख विभीषण शूल फेंककर रोता हुआ उससे लिपट गया, "हाय, पुत्र ! हाय राक्षसराज रावण के आशास्तम्भ ! हाय मन्दोदरी के नयन-तारे ! हाय सती सुलोचना के प्राण ! उठो, वत्स ! उठो, मैं कुलांगार विभीषण तुम्हारा पितृव्य हूं, मैं अभी द्वार खोल दूंगा, तुम शस्त्र लेकर लंका के कलंक को दूर करो। अरे, यह लंका का सूर्य तो मध्याह्न में ही अस्त हो गया। अरे, वीर ! तुम भूतल में क्यों पड़े हो ? देखो, सेना जयोल्लास कर रही है। शृंगीनादी नाद कर रहे हैं, घोड़े भैरव रव से हिनहिना रहे हैं। विलम्ब मत करो, उठो वीर ! उठो।"

लक्ष्मण ने उन्हें समझाते हुए कहा, "हे, राक्षसराज ! दुःख का दमन कीजिए। वृथा शोक से क्या लाभ है ? यह तो देवाज्ञा का पालन हुआ है। चलिए, अब शीघ्र प्रभु राम की सेवा में चलें। सुनिए, देवलोक में मंगल-वाद्य बज रहे हैं।" वे विभीषण का हाथ पकड़ वहां से चल पड़े।

उधर लंका के रंगमहल में प्रातः होते ही सुलोचना स्नान-पूजा कर अलंकार धारण करने लगी। दासी अलंकार पहनाने लगी।

अलंकार धारण करते-करते सुलोचना कहने लगी, "अरी, ये मणिमय भुजबन्ध पहनने से मेरा हाथ क्यों दुखने लगा ? कण्ठ की यह माला कण्ठ का अवरोध करने लगी। अरी, सखी वासन्ती ! ये अलंकार तो आप-ही-आप खिसक पड़ते हैं। मेरी दाहिनी आंख फड़क उठी, रोने की इच्छा होती है। स्वामी यज्ञागार में वैश्वानर की पूजा कर रहे हैं। तू अभी वहां जा और उनसे मुझ दासी का निवेदन कह कि आज अशुभ दिन में युद्ध न करें। मेरा मन तो जैसे डूबा जा रहा है।"

दासी बोली, "देवी ! तनिक ध्यान से सुनो, यह आर्त्तनाद कैसा है, कौन रो रहा है ? सेना का हुंकार बन्द हो गया दुन्दुभि नहीं बज रही है। शृंगीनाद भी नहीं सुनाई पड़ रहा है।"

सुलोचना ने भी आर्त्तनाद सुना, "अरे, यह हाहाकार और रुदनध्वनि तो बढ़ती ही जा रही है। आज यह लंका पर कौन-सी घोर विपदा आने वाली है ? पुरवासी क्यों रो रहे हैं ? चलो, देवमन्दिर में चलें।" वह उसी भांति अर्द्धवस्त्रालंकार पहने सखियों सहित उठकर चल दी।

नौ

कैलासधाम में शिव गूढ़ चिंता में निमग्न थे। अम्बिका भी निकट बैठी

थीं। नन्दी और अनुचर अपने-अपने स्थान पर थे।

शिव ने विषाद-भरे स्वर में कहा, "देवी ! लो तुम्हारा मनोरथ पूर्ण हुआ। रथीपति इन्द्रजीत मार डाला गया। यह देखो, वह यज्ञागार में मरा पड़ा है। सेनाएं अस्त्र फेंक रही हैं, नगर में हाहाकार मच रहा है। सती सुलोचना का भयानक क्रन्दन तो सुनो। कहो, अब तो तुम सन्तुष्ट हुईं ?"

अम्बिका बोली, "प्रभो ! भक्तों की तो हमें रक्षा करनी ही पड़ती है।"

"रावण मेरा परम भक्त है ! उसके दुःख से मैं भी दुःखी हूं। उसके ऊपर यह पुत्रशोक का आघात मेरे इस त्रिशूल के आघात से भी दारुण है। कहो, रावण पुत्र की मृत्यु का संवाद सुनकर क्या कहेगा ? भय के मारे कोई उससे यह संवाद नहीं कहता। यदि मैं उसकी रक्षा आज रुद्रतेज से नहीं करूंगा तो वह संवाद सुनते ही मर जाएगा। प्रिये ! मैंने तुम्हारे कहने से इन्द्र को सन्तुष्ट किया, अब यदि अनुमति हो, तो मैं दशानन को भी सन्तुष्ट करूं ?"

"देव ! जो इच्छा हो, सो करो। केवल यह याद रहे कि राम इस दासी का भक्त है।"

शिव ने हंसकर वीरभद्र से कहा, "वत्स ! तुम लंका जाओ। मेघनाद किस कौशल से मारा गया है, यह कोई नहीं जान सका और भय के मारे रावण से कोई उसका मृत्यु-समाचार भी नहीं कहता, इसलिए तुम राक्षस दूत के वेश में जाकर रावण से यह सन्देश कह दो, और रुद्रतेज से रावण को भर दो।"

वीरभद्र 'जो आज्ञा' कहकर वायुवेग से चल दिया।

उधर अपने सभाभवन में मन्त्री-प्रभासद सहित रावण स्वर्णासन पर गम्भीर भाव से बैठा हुआ कुछ सोच रहा था। कुछ देर बाद उसने कहा, "आज मेरा कलेजा ठण्डा होगा। क्या वीर पुत्र पूजा कर चुका ? क्या सैन्य दल युद्ध को प्रस्थान कर गया ? जयनाद नहीं सुनाई देता ? हाथी नहीं चिंघाड़ रहे। घोड़ों का भी भैरव रव नहीं सुन पड़ रहा है। वाम अंग फड़क रहे हैं। हृदय में वेदना हो रही है। मन्त्री ! क्या सेना प्रस्थान कर गई ?"

मन्त्री ने उत्तर दिया, "पृथ्वीनाथ ! शृंगीनाद तो नहीं सुनाई दे रहा; किन्तु यह कोलाहल कैसा है ?"

रावण ने कहा, "यह सेना का जयनाद नहीं है। देखो तो, यह कोलाहल तो बढ़ता ही जा रहा है।"

इसी समय वीरभद्र राक्षसदूत के रूप में आकर हाथ जोड़कर आंसू बहाने लगा। रावण ने पूछा, "अरे, दूत ! क्या सन्देश है ? कह, क्या

वीरपुत्र ने प्रस्थान कर दिया ? चतुरंगिणी सेना क्या शत्रु के सम्मुख पहुंच गई ?"

परन्तु दूत चुपचाप आंसू गिराता रहा।

"तू इतना शोकपूर्ण क्यों है ? क्या तू कोई अमंगल वार्ता कहेगा ? यदि भीषण वज्र से राम मारा गया हो, तो मुझसे कह, मैं तुझे राजप्रासाद दूंगा।"

दूत ने कहा, "स्वामी ! यह क्षुद्र प्राणी वह अमंगल वार्ता कैसे निवेदन करे ?"

"अमंगल वार्ता ? कौन-सी अमंगल वार्ता ? निर्भय कह। शुभाशुभ तो विधाता का विधान है। मैं तुझे अभयदान देता हूं।"

"हे, राक्षसराज ! अजेय युवराज यज्ञस्थल में छल से वध कर डाले गए। उनका रक्त-प्लावित शव यज्ञशाला में पड़ा है।"

यह सुनते ही रावण स्वर्णसिंहासन से मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। सभासद दौड़-धूपकर उपचार करने लगे। सहसा बहुत-से राक्षस रोते, चीत्कार करते सभास्थली में घुस आए। रावण ने चैतन्य होकर पूछा, "अरे, चिर-रणंजय इन्द्रजीत को किसने मारा, शीघ्र कहो !"

दूत ने हाथ जोड़कर बताया, "राजेन्द्र ! शोक त्यागकर धीरता से सुनिए। रामानुज लक्ष्मण ने छद्मवेश में यज्ञागार में प्रवेश करके उन्हें मार डाला। अब आप शोक को त्याग दीजिए, नहीं तो राक्षस कुलांगनाएं चक्षु-जलधारा से पृथ्वी को डुबो देंगी। हे राजन् ! आप महाधनुर्धारी हैं। शीघ्र पुत्रघाती दुर्मति शत्रु को भीमास्त्र से संहार कर लंका का त्रास हरिए।"

सहसा स्वर्गीय प्रकाश का वहां उदय हुआ। रुद्रतेज मूर्तिमान हुआ। रावण को दूत के स्थान पर स्वयं शिव बाघाम्बर पहने, त्रिशूल लिए दीख पड़े। रावण सिंहासन से उठ हाथ जोड़कर बोला, "देवाधिदेव। आज इतने दिन बाद इस दीन की सुध ली। देव ! आपके देखते-देखते लंका अनाथ हो गई।"

वह रुद्रतेज रावण के शरीर में प्रविष्ट हो गया। रावण ने गहरी सांस छोड़कर भीम गर्जन से कहा, "स्वर्णपुरी लंका के वीरो ! युद्ध के साज सजा लो। आज मैं इस शोकज्वाला से विश्व को भस्म करूंगा।"

दस

प्रभात के पूर्वाह्न में राम अपने शिविर में सहायक वर्गसहित बैठे प्रतीक्षा कर रहे थे। वानर सैन्य युद्ध के लिए सन्नद्ध हो रहा था, दलपति

अपने-अपने दलों को व्यूहबद्ध कर रहे थे। इसी समय विभीषण और लक्ष्मण रक्त में लथपथ वहां आए। समस्त सेना वज्रगर्जन से जय-जयकार करने लगी। राम उत्सुकता से खड़े होकर बोले, "अरे, सौमित्र आ गए ? यह देखो, उनके शरीर से रक्त झर-झर रहा है। राक्षसराज विभीषण का भीम शूल भी टूटा हुआ है। मालूम होता है, वीरवर कठिन युद्ध करके आ रहे हैं।"

लक्ष्मण दौड़कर राम के चरणों में गिर पड़े, "रघुकुलमणि ! इन चरणों के प्रताप से यह दास रण में जयी हुआ। अजेय मेघनाद आज मारा गया। देवगण निर्भय हुए। वायु और अग्निदेव स्वाधीन हो गए।"

राम ने लक्ष्मण को छाती से लगाकर आंसू बहाते हुए कहा, "धन्य वीर, धन्य ! अब मैं अवश्य सीता को प्राप्त कर सकूंगा। तुम्हारी जननी सुमित्रा धन्य है ! जन्मभूमि अयोध्या धन्य है ! और तुम्हारा यह ज्येष्ठ भ्राता भी धन्य है ! तुम्हारा यह यश जगत् में अमर रहेगा।"

फिर विभीषण को भी आलिंगन करके बोले, "अरे, सखा ! इस शत्रु-पुरी में शुभ घड़ी में मैंने तुम्हें पाया था, आज तुमने राघव कुल को मोल ले लिया। अब चलो मित्र ! शुभंकरी शंकरी की पूजा करें।"

समस्त वानर सैन्य ने फिर जयनाद किया। सहसा लंका सिंहनाद से हिल उठी, भूकम्प-सा आ गया। राम ने विभीषण से पूछा, "सखे ! क्या प्रलय होने वाला है ? पृथ्वी बारम्बार कांप रही है। यह प्रलयनाद कैसा है ? अकस्मात् इन प्रलयमेघों ने सूर्य का ग्रास कर लिया है। यह विद्युत क्षण-क्षण में चमक रही है। अरे, मित्र ! यह क्या माया है ?"

विभीषण ने भयभीत होकर कहा, "रघुकुलमणि ! राक्षसराज युद्ध-साज सज रहा है, पुत्रशोक से वह भस्म हो रहा है। उसी के पदभार से पृथ्वी कांपती है। अब इस संकट से लक्ष्मण और कटक की कैसे रक्षा होगी ? राक्षस सैन्य प्रलयनाद की भांति शृंगीनाद कर रहा है, अग्निवर्ण वाले स्वर्णध्वज रथ दुर्घोष करते हुए बाहर आ रहे हैं। चतुरंगिणी सेनाओं के पृथक-पृथक व्यूह सजाकर धीर नायक लंका से इस प्रकार बाहर हो रहे हैं, जैसे बांबी से काला सर्प निकलता है। उग्र उदग्र रथियों का सेनानायक है। वज्रधारी इन्द्र की भांति गज-सेनानायक वारुकुल है। अश्वारोहियों का नायक महावीर अतिलोमा हुंकार भर रहा है। भयानक आकृति वाला विडालाक्ष पैदलों का अधिपति है। महादुर्मद पताका दल आगे-आगे असंख्य पताकाएं लिए बढ़ रहा है। जैसे दानवनाशिनी चण्डी देवतेज से जन्म लेकर अट्टहास करती देवास्त्रों से सजी थी, उसी भांति उग्रचण्डा राक्षस सेना लंका में युद्धार्थ सज रही हैं, इसी से भू अधीर है।"

राम ने स्थिर होकर कहा, "तब मित्र ! शीघ्र ही सब सेनानायकों को यहां बुला लो। यह दास देवाश्रित है। देव ही इनकी रक्षा करेंगे।" विभीषण ने जोर से शृंगीनाद किया, जिसे सुनकर अंगद, नल, नील, हनुमान, जाम्बवन्त, रक्ताक्ष, सुग्रीव आदि सब नेता वहां आकर एकत्रित हो गए।

राम बोले, "वीरगण ! आज राक्षसपति रावण पुत्रशोक से विह्वल हो समरसाज सज रहा है। तुम सब त्रिभुवनजयी शूर हो। शीघ्र सजकर इस घोर विपत्ति में राम की रक्षा करो। अब लंका में एक रावण ही रथी बचा है। तुम्हारे ही बाहुबल पर मैंने समुद्र को बांधा। शम्भुसम पराक्रमी कुम्भकर्ण का वध किया। अजेय मेघनाद मारा गया। मित्रो ! रघुकुलवधू रावण के कारागार में बन्द है, उसका उद्धार कर मेरे कुल और मान की रक्षा करो।"

यह सुन सुग्रीव ने कहा, "हे, शूर ! आपके प्रसाद से मैं राजसुख भोग रहा हूं। मैं आपके चरणों में यह प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं रावण को मारूंगा या स्वयं मरूंगा। राक्षसों को सजने दो। मेरे वानर सैन्य में एक भी ऐसा नहीं, जो यम से भी डरे। हम निर्भय जूझेंगे।"

सुग्रीव के यह वचन सुनकर सब सैन्य गरज उठा, जिससे कनकलंका हिलने लगी। इसी समय देव सैन्य सहित वज्रमणि इन्द्र ऐरावत पर आरूढ़ वहां प्रकट हुए। उनके आते ही स्वर्गीय वाद्य और संगीत से दिशाएं भर गईं। राम ने इन्द्र को साष्टांग प्रणाम करके कहा, "देवपति ! इस दास को पूर्व पुरुषों के और पूर्व जन्म के पुण्य प्रताप से ही इस विपत्ति में आपका पदाश्रय प्राप्त हुआ है।"

इन्द्र बोले, "हे रघुमणि ! तुम देवप्रिय हो। आओ, मेरे इस रथ पर चढ़कर रावण से युद्ध करो।"

राम इन्द्र के रथ पर आरूढ़ हो गए। जुझाऊ बाजे बजते ही समस्त सैन्य में अपार शौर्य व्याप्त हो गया। वानर सैन्य व्यूहबद्ध हो युद्धभूमि की ओर चलने लगी।

उधर रावण के राजमहल के प्रांगण में भी युद्ध की तैयारियां हो रही थीं। रावण रणसाज सजकर शस्त्रबद्ध उन्मत्त सिंह की भांति खड़ा था। इधर-उधर सेनापति वीरभाव से खड़े अगणित सैन्य को व्यूहबद्ध कर रहे थे। कुछ सैन्य युद्धक्षेत्र में जा भी चुका था, रणवाद्य बज रहे थे। ध्वजा आकाश में उड़ रही थी। रावण को युद्धक्षेत्र में जाने को उद्यत देख मन्दोदरी सखियों सहित आ उसके पैरों में गिर पड़ी।

रावण ने मन्दोदरी को उठाकर कहा, "प्रिये ! धैर्य धारण करो !

विधाता हमारे प्रतिकूल है। तुम शीघ्र अन्तःपुर लौट जाओ। मैं इस समय रण का यात्री हूं। अब तो मुझे पुत्रश्रेष्ठ की मृत्यु का बदला लेना है। जाओ, देवी ! विलाप के लिए बहुत समय मिलेगा। मैं तनिक उस कपटी चोर सौमित्र का हृदय विदीर्ण कर आऊं, फिर इस निरर्थक राज्यसुख को तिलांजलि देकर हम दोनों रात-दिन एकान्त में बैठ पुत्र का स्मरण करते रहेंगे। अरे, रोती हो ? रानी यह रोषाग्नि अश्रुनीर से न बुझेगी। विशाल शाल आज भूपतित हो गया। गिरिवर का शृंग चूर्ण हो गया। चन्द्रमा को सदैव के लिए राहु ने ग्रस लिया।"

"हाय, इस कनकलंका को अनाथ करके राक्षसकुल के अन्तिम एकमात्र नक्षत्रस्वरूप तुम भी उस मायावी के सम्मुख जा रहे हो। हे, नाथ ! मैं कैसे धैर्य धारण करूं ?"

"देवी ! धैर्य धारण करना ही होगा। अब तुम अन्तःपुर में जाओ।"

रानी रोती हुई, गिरती-पड़ती अन्तःपुर की ओर बढ़ी।

रावण ने अपने सैनिकों को ललकारकर कहा, 'जिसके पराक्रम से राक्षस सैन्य देवलोक और नरलोक को पराजित करती रही, जिसके भय से पाताल में नाग भयभीत रहे, वह राक्षसकुल का दीपक अन्याम्य समर में मारा गया है। रामानुज लक्ष्मण ने चोर की भांति देवालय में प्रवेश करके पुत्रवर का वध किया है। हाय, मेरा पुत्र वहां उस समय निरस्त्र था, उसी दशा में वह मारा गया। मैंने तुम्हें सदा पुत्रवत् पाला है. सारे भूमण्डल में राक्षसवंश की ख्याति फैली है; परन्तु मैंने व्यर्थ देव, दैत्य नरकुल को जय किया। अब विलाप से क्या होगा ? क्या वह फिर लौट आएगा ? क्या आंसुओं से मृत्यु भी द्रवित हो सकती है ? मैं आज युद्ध में अधर्मी मूढ़ सौमित्र का वध करूंगा. नहीं तो लंका में नहीं लौटूंगा। रथीगण ! यह मेरी प्रतिज्ञा है। अरे, मेघनाद का वध हुआ है, यह सुनकर राक्षसकुल में कौन जीना चाहेगा ? चलो, समर में पुत्र का शत्रु के रक्त से तर्पण करें।"

यह सुन सेना सिंहनाद कर उठी और उसने युद्धस्थल की ओर मुख किया। युद्धस्थल पहुंचते ही दोनों सेनाओं में घनघोर युद्ध छिड़ गया। हाथी, पैदल, रथी, सवार सब परस्पर लड़ने लगे। पुष्पक पर आरूढ़ रावण को सारथी वायुवेग से राम के रथ के सम्मुख ले चला।

रावण ने सहस्रों मायास्त्र चलाकर इन्द्र के व्यूह को छिन्न-भिन्न कर डाला। कुमार कार्तिकेय अग्नि के रथ में बैठकर आगे बढ़े। उन्हें देख रावण रथ रोककर हाथ जोड़ प्रणाम कर बोला, "देवकुमार ! यह दास शंकर और शंकरी की रात-दिन पूजा करता है। आज आपको बैरी दल के साथ क्यों देखता हूं ? नराधम राम पर आपका इतना अनुग्रह क्यों है ? कपटी

लक्ष्मण ने अधर्मपूर्वक मेरे पुत्र का वध किया है। आज मैं उसका हनन करूंगा। कृपा कर रास्ता छोड़ दीजिए।"

कार्तिकेय ने कहा, "रथीराज ! देवराज इन्द्र के आदेश से मैं आज लक्ष्मण की रक्षा करूंगा। तुम मुझे बाहुबल से परास्त करके आगे जा सकते हो।"

यह सुनकर रावण ने हुंकार भरी और आग्नेयास्त्र छोड़ दिया, जिससे कुमार कार्तिकेय शरजाल में छिप गए। तभी विजया सौदामिनी के रूप में आकर कुमार के कान में बोली, "हे, शक्तिधर ! शक्ति का आदेश है कि अपने अस्त्र समेट लो। आज रावण रुद्रतेज से परिपूर्ण है।"

कार्तिकेय ने हंसकर रथ लौटा लिया। अब रावण सिंहनाद करता हुआ इन्द्र के ऐरावत के सम्मुख आया। हजारों गन्धर्व दौड़कर रावण पर आग्नेयास्त्रों की वर्षा करने लगे। रावण ने सबको परास्त कर ऐरावत के सिर पर तोमर मारी; परन्तु इन्द्र ने उसे बीच ही में काट डाला।

यह देख रावण क्रुद्ध हो बोला, "अरे, निर्लज्ज ! तेरी ही चाल से पुत्र का वध हुआ है और अब उसके वध होने पर तू लंका में आया है ? शोक, तू अमर है; पर लक्ष्मण की रक्षा आज मेरे हाथ से नहीं कर सकता।"

रावण गदा लेकर रथ से कूद पड़ा। इन्द्र ने वज्र-प्रहार किया। रावण ने भी गदा मारकर ऐरावत को गिरा दिया, फिर रथ पर सवार हो गया। इन्द्र भी रथ पर सवार हो गए। दोनों में घनघोर दिव्यास्त्रों से युद्ध होने लगा। राम दिव्य रथ पर बैठे धनुष-बाण ले सिंहनाद कर आगे बढ़े।

रावण ने राम को सम्बोधित करके कहा, "सीतापति ! आज मैं तुमसे नहीं लड़ूंगा। इस पृथ्वी पर और एक दिन निर्विघ्न जीवित रह लो। वह तुम्हारा कपटी पामर भाई कहां है ? आज उसे मारूंगा।"

उसने दूर से लक्ष्मण को देखा। उसने भैरव नाद करते उसी ओर रथ बढ़ाया। लक्ष्मण भी कभी रथ पर चढ़कर, कभी उतरकर युद्ध करने लगे।

हनुमान भी विडालाक्ष को मारकर रावण के सम्मुख आकर हुंकार भरने लगे।

रावण ने उनपर सहस्र बाण छोड़कर कहा, "हट रे, पशु ! मार्ग छोड़।"

हनुमान ने वायु का स्मरण किया और गरजकर बोले, "अरे, पर-दारा लोभी ! चोर ! तनिक ठहर।"

उन्होंने रथ को पकड़कर घुमा डाला। रावण महास्त्र छोड़ आगे

बढ़ा; पर तभी सुग्रीव उदग्र को मारकर आगे आ खड़े हुए। उन्हें देखकर रावण हंसा, "अरे, बर्बर! अपनी भ्रातृवधू तारा को छोड़ तू किस कुक्षण में यहां मरने आया? हट जा, तुझे छोड़ देता हूं, नहीं तो तारा को फिर विधवा होना पड़ेगा।"

सुग्रीव ने कहा, "अरे, अधर्मी! मैं अभी तुझे मारकर मित्र वधू का उद्धार करता हूं।"

उन्होंने गरजकर एक गिरिशृंग रावण पर फेंका। रावण ने उसे शरों से बींधकर सुग्रीव को भी शरों से वेध डाला।

अब रावण बाधाहीन होकर लक्ष्मण के सम्मुख आया। लक्ष्मण को देखते ही वह क्रोधित हो उठा। उसने कहा, "नराधम! इतनी देर में तू मुझे मिला। कह, कहां है इन्द्र-कार्तिकेय-राम-सुग्रीव-हनुमान? अरे, नीच! अब बोल, तेरी रक्षा कौन करेगा? अब अपनी जननी सुमित्रा और पत्नी उर्मिला का स्मरण कर ले। मैं अभी तेरा मांस मांसाहारी जीवों को दूंगा।"

उसने धनुष उठाकर अनगिनत बाण छोड़ डाले। रावण का यह प्रहार देख राम के कटक में हाहाकार मच गया। लक्ष्मण ने तनिक भी भयभीत न होकर कहा, "अरे, राक्षसराज! मेरा जन्म क्षत्रियकुल में हुआ है। मैं यम से भी नहीं डरता। तुम पुत्रशोक में अधीर हो रहे हो, थोड़ा धैर्य धारण करो, मैं तुम्हें अभी तुम्हारे पुत्र के पास पहुंचाकर शोक दूर कर दूंगा।"

दोनों में घनघोर युद्ध छिड़ गया। भांति-भांति के दिव्यास्त्र छोड़े जाने लगे। रावण असंख्य बाण मारता; परन्तु लक्ष्मण सबको काट डालते। यह देख रावण ने विस्मित होकर कहा, "रे, सौमित्र! मैं तेरी प्रशंसा करता हूं। तुझमें शक्तिधर कार्तिकेय से अधिक सामर्थ्य है; परन्तु आज तू जीवित नहीं बच सकता। ले रे, मेरे पुत्रघाती! मर!"

यह कहकर रावण ने प्रबल महाशक्ति छोड़ी। वह बिजली की भांति प्रकाश करती हुई सहस्रों बिजली की कड़कड़ाहट के साथ लक्ष्मण के हृदय में जाकर लगी। लक्ष्मण मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़े। वानर सैन्य में आर्त्तनाद फैल गया। यूथ के वानर योद्धाओं ने लक्ष्मण के शरीर को घेर लिया। लक्ष्मण को मृत समझ रावण बादल की भांति गरजता हुआ लौट गया। राक्षस सैन्य में बाजे बज उठे। राम सैन्य अस्त-व्यस्त हो शोक-विह्वल हो गया।

ग्यारह

उस कालरात्रि में राम कटक में स्थान-स्थान पर अग्निचिताएं जल

रही थीं। एक स्थान पर लक्ष्मण पृथ्वी पर पड़े थे। राम भी निकट ही मूर्च्छित पड़े थे। विभीषण, अंगद, हनुमान, नल, नील, सुग्रीव, सुबाहु आदि सेनानायक नीचा सिर किए खड़े थे। सैन्य स्तब्ध थी। कोई विश्राम नहीं कर रहा था।

कुछ देर बाद राम की मूर्च्छा टूटी। उन्होंने चैतन्य होकर लक्ष्मण को सम्बोधित करते हुए कहा, "अरे, वीर! तुम तो सदैव रात्रि में धनुष-बाण लिए जागा करते थे। आज मैं इस राक्षसपुरी में फंसा हूं, तो तुम ऐसे निश्चित सो रहे हो? कहो, अब कौन मेरी रक्षा करेगा? अरे जानकी देवर लक्ष्मण को याद करके कारागार में सदा रोती है। तुम तो सदा माता के समान उसका आदर करते थे. आज कैसे भूल गए? अरे, तुम्हारी कुल-वधू को राक्षसराज ने बन्दी बना रखा है, ऐसे दुष्ट चोर को बिना दंड दिए तुम्हें इस प्रकार शयन करना उचित है? अरे, बली! तुम्हारे बिना यह वीर हनुमान ऐसे हो रहे हैं, जैसे बिना डोरी का धनुष। ये सुग्रीव, विभीषण, जाम्बवन्त, अंगद, देखो सभी व्याकुल हैं। हां, वीर रघुकुलमणि! अरे धनुर्धर, यदि इस रण में तुम क्लान्त हो गए, तो चलो, वन को लौट चलें। अभागिनी सीता बन्दी ही रहे। अरे, जब माता पूछेंगी कि मेरा नयन-मणि लक्ष्मण कहां है, तो क्या जवाब दूंगा मैं? उर्मिला को क्या कहूंगा? पुरजनों को क्या कहूंगा?"

यह कहकर वे सिर धुनकर रोने लगे। सब योद्धा भी रोने लगे। एकाएक प्रकाश फैल गया और महामाया प्रकट होकर राम का स्पर्श करके बोलीं, "उठो, वत्स! शोक त्याग करो। तुम्हारा भाई सौमित्र जी उठेगा।"

राम ने चैतन्य होकर कहा, "माता! मैं इस चन्द्र, सूर्य, नक्षत्रयुक्त संसार में लक्ष्मण के बिना जीवित नहीं रह सकता। आज्ञा दीजिए, तो मैं यहीं आपके चरणों में प्राण त्याग दूं।"

"रामभद्र! रुदन बन्द करो। सुलक्षण लक्ष्मण का प्राण अभी उसकी देह में इस प्रकार बद्ध है, जैसे कारागार में बन्दी। अब उसे जीवित करने की जो युक्ति बताती हूं, सो सुनो।"

"देवी! उस युक्ति को करने में हमारे प्राण भी जाएं, तो भी हम करेंगे।"

"राम! तुम तुरन्त सागर के पवित्र जल में स्नान करके मेरे साथ यमालय चलो। शिव की कृपा से तुम सशरीर प्रेतपुर में प्रवेश कर सकोगे। यम स्वयं तुम्हें लक्ष्मण के जीवन-लाभ करने के उपाय बताएंगे। उठो, मैं सुरंगपथ बताऊंगी। तुम सुग्रीवादि दलपतियों की रक्षा में लक्ष्मण को छोड़

निर्भय मेरे साथ चलो।"

"जो आज्ञा, देवी !" फिर सुग्रीव आदि से बोले, "बंधुगण ! यह भाग्यहीन राम विपत्ति में आपके सहारे है। अपने प्राणधन को तुम्हें सौंपे जाता हूं।" राम महामाया के साथ प्रेतपुरी चले।

सर्वत्र अंधकार था। कड़कड़ाहट, गर्जन-तर्जन, वैतरणी नदी का कल-कल निनाद। कभी उसपर स्वर्ण पुल दीखता, कभी लुप्त हो जाता। असंख्य प्राणियों का आर्त्तनाद सुनाई दे रहा था। राम ने कहा, "हे, माता ! यह अद्भुत चमत्कार कैसा है ? यह माया का पुल कभी दीखता है, कभी लुप्त हो जाता है। इस महानदी में असंख्य प्राणी कहां बहे चले जा रहे हैं ?"

"राम ! यही वैतरणी नदी है, और इसपर यह सेतु कामरूप है। यह पापी के लिए अदृश्य हो जाता है और पुण्यात्मा के लिए प्रकट हो जाता है। आओ, मैं तुम्हें ऐसे दृश्य दिखाऊंगी, जो मानव-नेत्र ने कभी नहीं देखे।"

वे आगे बढ़ीं, विराट मूर्ति दण्डपाणि यमदूत सम्मुख दीख पड़े।

यमदूत ने गरजकर पूछा, "तुम कौन हो और किस बल से तुमने इस आत्मामय प्रदेश में शरीरसहित प्रवेश किया है ?"

माया ने हंसकर, त्रिशूल दिखाकर कहा, "यह देखो।"

यमदूत ने नमस्कार करके कहा, "साध्य देवी ! आपकी गति रोकने की मेरी सामर्थ्य नहीं।" यह कहकर वे चले गए।

दोनों फिर आगे बढ़े। यमपुरी के लौह द्वार पर ज्वर दीख पड़ा। अस्थि-पंजर थरथर कांपता हुआ, कभी दाह से जलता हुआ।

माया बोलीं, "हे, राम ! यह पापियों के जीवन-मरण का साथी ज्वर है और यह देखो, अजीर्ण है, यह भोजन करता है, वमन करता है और फिर उसे ही खाता है। यह मदिरा है, कैसी आंखें मिचमिचा रही है। इसीके पास यह दुष्टा कामुकता है, इसके शरीर से कैसी बास आ रही है। यह देखो, यह राजयक्ष्मा है, दिन-रात खांस-खांसकर खून थूकती है। यह ज्योतिहीन नेत्रों वाली विशूचिका है। यह देखो, सम्मुख अग्निरथ में युद्ध आ रहा है, उसके वस्त्रों से ताजा रक्त टपकता है। उसका सारथी क्रोध है, गले में मुण्डमाल पहने है। वह आत्महत्या वृक्ष से लटक रही है। रस्सी में उसका शरीर झूल रहा है। लाल जीभ और आधी बन्द आंखें कैसी भयानक हैं। आओ, अब मैं तुम्हें इस यमपुरी में नरकुण्ड दिखाऊं। सब मिलाकर चौरासी कुण्ड हैं। यह देखो, यही रौरव कुण्ड है। इसमें अनन्त अग्निज्वाल भरा है। परधनहारी यहां वास करता है।"

राम ने अधीर होकर कहा, "दया करो मातेश्वरी ! मैं यह सब नहीं

देख सकता। हाय-हाय ! यहां तो करोड़ों प्राणी छटपटा और हाहाकार कर रहे हैं। हाय-हाय ! कैसी भयानक दुर्गन्ध है, जैसे लाखों शव जल रहे हों।"

"ठहरो, मैं मायाबल से तुम्हारे नासारन्ध्र बन्द किए देती हूं। यह देखो यह कुम्भीपाक नरक है। यहां तप्त तेल में प्राणी तले जाते हैं।"

तभी सब प्रेत राम को घेरकर खड़े हो गए।

उन्होंने पूछा, "कौन हो ? तुम कौन हो ? किस मायाबल से शरीर सहित यहां आ गए ? तुम्हें देखकर इस नरक में भी शान्ति मिलती है।"

राम बोले, "हे, प्रेतकुल ! यह दास दशरथपुत्र राम है। भाग्यदोष से मैं वनवासी हुआ हूं और शंकर की आज्ञा से धर्मराज से भेंट करने आया हूं।"

एक प्रेत ने कहा, "हां, मैं तुम्हें जानता हूं, तुम्हारे बाण से मैं मरा था मैं मारीच हूं।"

पर तुरन्त ही सब प्रेत भाग गए। एक आर्त्तनाद सुनाई दिया। यम-दूती बहुत-सी स्त्रियों को मारती ला रही थी। एक स्त्री अपने बाल नोच-कर बोली, "हाय, मैं तुम्हें चिकनाकर कामियों को फंसाती थी।"

दूसरी ने अपनी नंगी छाती चीरकर बताया, "हाय, मैं तुझे हीरे-मोतियों से सजाती थी।"

तीसरी अपनी आंखें उंगलियों से निकालकर कहने लगी, "मैंने तुमसे बहुतों को कुदृष्टि से देखा था।"

चौथी अपना मुख नोचकर बोली, 'अरे, तेरे सौंदर्य से मैंने बहुतों को ठगा।"

यह देख राम ने कहा, "हे, माता ! यहां से चलिए। यह तो देखा नहीं जाता।"

माया ने बताया, "यह सब कुलटा स्त्रियां हैं। कभी यह कामियों का मन मोहती थीं, अब वह रूपमाधुरी कहां है !"

"हे, माता ! अब कृपाकर मुझे धर्मराज के निकट ले चलिए। मैं उनसे लक्ष्मण को विनय पूर्वक मांग लूंगा।"

"राम ! यह पुरी असीम है। अच्छा, उत्तर द्वार पर चलो, वहां धर्म-राज मिलेंगे।"

राम क्षण-भर में उत्तर द्वार पर पहुंच गए। वहां मधुर वाद्य बज रहे थे, फूल खिल रहे थे, शीतल-मंद-सुगन्ध वायु बह रही थी।

महामाया ने बताया कि इस द्वार पर वे वीर सुख भोगते हैं, जो युद्ध में प्राण त्यागते हैं, "देखो, वह एक वीर आ रहा है।"

वीर प्रेत ने समीप आकर कहा, "हे, राम ! आप यहां सशरीर किस भांति आए हो ? मुझे पहचानते हो ? तुमने सुग्रीव का पक्ष लेकर अन्याय से मुझे मारा था; पर डरो मत, यहां हम लोग अक्रोधी हैं। देखो, वह जो सुनहरे फूलों का उद्यान दीख रहा है, उसमें सती सीता की रक्षा में प्राण देने वाले जटायु विहार करते है।"

यह सुन राम आगे बढ़े। जटायु ने उन्हें देखा। वह बोला, "अरे, रघुकुलमणि ! तुम्हें सशरीर यहां देख मेरे नयन तृप्त हुए। कहो, क्या दुर्मति रावण मारा गया ?"

राम ने उत्तर दिया, "तात ! आपके पद-प्रसाद से घोर संग्राम में अनेक राक्षस विध्वस्त हो गए हैं। राक्षसपुरी में अकेला रावण रह गया है। उसकी शक्ति से लक्ष्मण मारा गया है, इसलिए यह दास इस दुर्गम देश में शिव के आदेश से आया है। मुझ दास से कहो कि मेरे पिता कहां हैं ?"

"वे पश्चिम द्वार पर राजर्षियों में विराजमान हैं। आओ, देखो, वह द्वार स्वर्ग का है और उसके गृह हीरों से जड़े हैं। वहां तुम्हारे पिता तुम्हारे लिए धर्मराज की पूजा करते हैं। देखो, वह स्वयं तुम्हें देखकर कैसे दौड़े आ रहे हैं।"

दशरथ ने पास आकर दोनों बाहु फैलाकर कहा, "प्राणधिक ! तुम इतने दिन से मेरे नेत्रों को तृप्त करने इस दुर्गम देश में आए हो ? रामभद्र ! तेरे वियोग में बड़े दुःख सहे। अरे, धर्मपथगामी वत्स ! निर्दय विधाता ने मेरे कर्मदोष से तुझे क्लेश दिया।"

राम ने रोते हुए कहा, "तात ! अब यह दास अगाध सागर में बहा जाता है। इस विपद में मेरी रक्षा कीजिए। आज घोर रण में भाई लक्ष्मण मारा गया है। उसे मिले बिना मैं चन्द्र-सूर्य-तारों से सुशोभित मृत्युलोक में नहीं जाऊंगा।"

"मैं सब जानता हूं वत्स ! पर चिन्ता न करो। लक्ष्मण का प्राण अभी उसके शरीर में बद्ध है। सुनो, गन्धमादन नामक पर्वत पर शृंगदेश में हेम लता नामक एक ओषधि है, उसे लाकर अपने भाई को जीवित करो। आज स्वयं यमराज ने यह उपाय मुझे बताया है। सुनो, तुम्हारा अनुचर हनुमान पवन पुत्र है। वह प्रभंजन सम महाबली है। वह मुहूर्त्त-भर में ओषधि ले आएगा और तुम नियत समय पर विषम-संग्राम में रावण का वध कर सकोगे। तुम्हारे बाण से वह पापी सवंश नष्ट होगा। रघुकुलवधू घर लौटकर आवेंगी; परन्तु वत्स ! तुम्हारे भाग्य में सुख नहीं है। जैसे धूपदान में गंधरस जलकर गृह को सुगन्धित करता है, उसी तरह तुम्हारा अक्षय सुयश भी देश में व्याप्त रहेगा। पुत्र, भूमण्डल में अब आधी रात बीत गई है,

जल्दी से चले जाओ और हनुमान को वह ओषधि लेने भेजो। रात रहते ओषधि आनी चाहिए।"

"तात ! अपनी चरणरज दीजिए।"

"नहीं, वत्स ! तुम मुझे नहीं छू सकते। यह वह शरीर नहीं है, छाया-मात्र है।"

राम ने प्रणाम करके कहा, "जैसी आज्ञा।"

बारह

अगला प्रभात आया। रावण विषण्णवदन आकर अपने स्वर्णसिंहासन पर बैठ गया। सभासद, मन्त्री, सेवक सब यथास्थान बैठे हुए थे। इसी समय राम कटक का उल्लास-कोलाहल सुनाई दिया।

रावण ने मंत्री से पूछा, "सचिव सारण ! वैरीगण रात-भर शोकातुर रहे, उनके क्रन्दन से लंका की प्राचीर कांप गई; परन्तु अब यह कैसा आनन्दोल्लास आकाश को विदीर्ण कर रहा है ? क्या मूढ़ सौमित्र ने पुनः प्राणदान पाया है ?"

सारण ने हाथ जोड़कर कहा, "राजेन्द्र ! इस मायिक संसार में दैवी माया को कौन समझ सकता है ?"

"अरे, देव उसके अनुकूल है। जिस राम ने अविराम सागर को अपने कौशल से बांध डाला, जिसकी माया के तेज से शिलाएं जल में तैरने लगीं जो समर में दो बार मरकर जी उठा, उसके लिए असाध्य क्या है ? परन्तु अब यह कौन-सी नयी घटना घटित हुई ?"

सारण ने खेदपूर्वक उत्तर दिया, "स्वामी ! शैलकुलपति गंधमादन ने निशाकाल में महौषधि देकर लक्ष्मण को प्राणदान दिया है। वही शूर सौमित्र वीरदर्प से गरज रहा है और रामसैन्य उल्लास से नाद कर रहा है।"

"किन्तु सुदूर पर्वतराज के अगम्य शिखर से इस अल्पकाल में कौन बली महौषधि लाया ?"

"महामारुति ने यह पराक्रम किया। जैसे हिमान्त में भुजंग तेजपूर्ण हो जाता है, उसी भांति दिव्यौषधि के प्रभाव से लक्ष्मण आज ओज से परिपूर्ण हो रहा है।"

रावण ने विषाद से सांस लेकर कहा, "विधि के विधान में कौन क्या करेगा ? सम्मुख समर में मैंने देव और मनुष्य सभी को परास्त कर कल जिस रिपु का वध किया, वह दैवबल से बच गया। यमराज भी अपना धर्म भूल गए। अब इस व्यर्थ प्रलाप से क्या होगा ? मैं समझ गया, राक्षसकुल-

गौरव रवि अस्त होगा। जब शूलीसम भाई कुम्भकर्ण और अजेय इन्द्रजीत समर में मारे गए, तब अब मैं किसलिए प्राण धारण करूं! इस भव में उन्हें कहां पाऊंगा? मन्त्रिश्रेष्ठ! तुम बैरी राम से जाकर कहो कि राक्षस-राज रावण तुमसे यह भिक्षा मांगता है कि सात दिन तक बैरभाव त्याग सैन्यसहित विश्राम करो। राजा अपने पुत्र की अन्त्येष्टि क्रिया यथाविधि करना चाहता है। उनसे कहना कि हे वीर! तुम्हारे बाहुबल से वीरयोनि लंका अब वीर शून्या है। तुम वीरकुल में धन्य हो, विधि तुम्हारे अनुकूल है, राक्षस कुल विपत्तिग्रस्त है, सो तुम वीरधर्म का पालन करो। वीरगण सदा विपक्षी वीर का सम्मान करते हैं। जाओ, मंत्रिवर! अब विलम्ब न करो।"

यह सुन मंत्री सारण वन्दना कर साथियों सहित नीचा सिर किए रोता हुआ राम के पास चला। रावण ठंडी सांस लेकर उठा और अन्तःपुर की ओर बढ़ा।

राम-लक्ष्मण आसन पर बैठे सब वीरोंसहित युद्ध-मंत्रणा कर रहे थे। दल में उत्साह से समरसाज सजने की तैयारियां चल रही थीं। अंगद ने आकर सूचना दी, "देव! जगद्विख्यात राक्षसकुल मंत्री सारण समस्त मंत्रियों एवं प्रमुख राजसभासदों सहित शिविर-द्वार पर उपस्थित होकर चरण-दर्शन की प्रार्थना करता है। जो आज्ञा हो, वह यह दास उससे कहे।"

"युवराज! मंत्रिवर को आदर सहित यहां लाओ। दूत सर्वथा अवध्य होते हैं।"

अंगद चले गए। कुछ देर बाद सारण ने साथियों सहित आकर हाथ जोड़ राम की वन्दना की, "राजपद युग्म की वंदना करता हूं।"

राम ने उन्हें उचित आसन देकर कहा, "राक्षस मंत्रिवर! यह दरिद्र राम आपकी क्या सेवा कर सकता है?"

"प्रभो! राक्षसकुल-निधि रावण आपसे यह भिक्षा मांगता है कि आप सात दिन तक बैरभाव त्यागकर सैन्यसहित विश्राम करें। राजा अपने पुत्र की यथाविधि क्रिया करना चाहता है। वीर विपक्षी वीर का सदा सत्कार किया करते हैं। हे, बली! आपके बाहुबल से वीरयोनि स्वर्णलंका अब वीरशून्या हो गई है। विधाता आपके अनुकूल है और राक्षसकुल विपत्ति ग्रस्त है, इसलिए आप रावण का मनोरथ पूर्ण करें।"

"मंत्रिवर! आपका स्वामी मेरा परम शत्रु है, फिर भी मैं उसके दुख से बड़ा दुःखी हूं। विपद में शत्रु-मित्र मेरे लिए समान हैं। तुम लंका को लौट जाओ। मैं सैन्यसहित सात दिन तक अस्त्र ग्रहण नहीं करूंगा। राक्षस

राजा ने कहा कि जो अपने धर्म-कर्म में रत है, उसे धार्मिक जन कभी नहीं मारते।"

"रघुकुलमणि ! आप धन्य हैं। आप जगत में विद्या, बुद्धि और बाहु-बल में अतुल हैं। महामति ! आपको ऐसा ही उचित है। महाबली रावण जैसा राक्षस दलपति है, वैसे ही आप नर दलपति हैं। कुछ क्षण में आप दोनों वीरों में शत्रुभाव उदय हुआ था। विधि का विधान अटल है।"

यह कह और राम का अभिवादन कर मन्त्री लौट गए।

राम ने अपने नायकगणों से कहा, "वीरगण ! अब आप भी वीरवेश त्याग सात दिन तक विश्राम कीजिए। मित्र विभीषण और किष्किन्धापति मित्र सुग्रीव ! आप इस सुयोग में समस्त सेना का निरीक्षण करके व्यूह-बद्ध कर लीजिए। सात दिन बाद शोक दग्ध रावण प्राणों पर खेलकर काल की भांति हमपर टूटेगा।"

सुग्रीव बोले, "राघवराज ! राक्षस रावण अब हततेज हो गया है। उसका अन्त निकट है, तथापि आपकी आज्ञानुसार हम कटक को परिपूर्ण रीति से व्यवस्थित करते हैं।"

राम ने अंगद से कहा, "महाबली युवराज ! तुम दस सौ योद्धाओं को लेकर मित्र भाव से राक्षसों के पास समुद्र तट पर जाओ। सावधानी से जाना। मन में शत्रु-मित्र का भाव न लाना। लक्ष्मण को देखकर कदाचित राक्षसराज को रोष आ जाए, इससे युवराज, तुम्हीं जाओ। तुम्हारे प्रतापी पिता ने एक बार रावण को पराजित किया था, इसलिए तुम इस समय शिष्टाचार से उसे संतुष्ट करो।"

तेरह

अशोक वाटिका में सीता मलिनवेश एक शिला पर बैठी कुछ सोच रही थीं। कुछ देर बाद सरमा राक्षसी वहां आई। सीता ने उससे पूछा, "सखि, आज पुरवासी दो दिन से हाहाकार क्यों कर रहे हैं ? कल दिन-भर रणनाद होता रहा। कहो बहन ! कल कौन हारा, कौन जीता ? आज अग्निशिखा के समान बाण आकाश में नहीं दीख रहे। कल सन्ध्या समय तो राक्षस सैन्य ने जयनाद के साथ लंका में प्रवेश किया, आनन्द के बाजे बजे थे, आज सन्नाटा क्यों है ? हाय, मैं किससे पूछूं ? चेरियां तो बतातीं ही नहीं।"

"देवी ! तुम्हारे सौभाग्य से अजेय इन्द्रजीत रण में मारा गया है। इस लिए सारी लंका रात भर विलाप करती रही। इतने दिन में राक्षसेन्द्र का बल क्षय हुआ। तुम्हारे देवर ने यह देवासाध्य कार्य किया है।"

"सखी ! इस शुभ संवाद के लिए तुझे क्या दूं ? हाय इतने दिन में अब बन्दिनी के कारागार का द्वार खुलेगा; परन्तु यह हाहाकार की ध्वनि तो बढ़ती ही आ रही है।"

"राक्षसेन्द्र रावण ने राघवराज के साथ सात दिन तक युद्ध-विराम संधि की है। अब वह पुत्र की प्रेतक्रिया के लिए सिन्धु तीर जा रहा है। हाय, दैत्यबाला सुलोचना साध्वी आज पतिपद गोद में रखकर भस्म होगी।"

"अरी, मैं अभागिनी जिस घर में प्रवेश करती हूं, उसी का सुख-प्रदीप बुझ जाता है। पति और देवर वनवासी हैं, श्वसुर ने प्राण त्याग दिया, अनेक राक्षसों का मैं काल बनी। देखो, अब अतुलनीया सुन्दरी सुलोचना भस्म होगी।"

"देवी ! इसमें तुम्हारा क्या दोष है ? राक्षसराज अपने ही कुकर्म के फल से डूब रहा है। तुमने बड़े कष्ट सहे हैं। अब उनका अन्त होने वाला है। मैं जाती हूं। सती को एक बार देख आऊं।"

चौदह

लंका का पश्चिमी द्वार वज्रध्वनि से खुल गया। एक लाख राक्षस हाथ में स्वर्णदण्ड लिए बाहर आए। प्रत्येक के हाथ में रेशमी पताकाएं थीं। वे राजपथ के दोनों ओर पंक्ति बांधकर चल रहे थे। सबसे आगे हाथियों की पीठ पर दुन्दुभी थी, जिसका गम्भीर रव दिगन्त में व्याप्त हो रहा था। पैदल सेना कतारों में चल रही थी। हाथी-घोड़े पीछे थे। करुण वाद्य बज रहे थे। असंख्य राक्षस वीर स्वर्णवर्म पहने, स्वर्णध्वज लिए, भारी-भारी तलवार कमर में लटकाए, नीचा सिर किए, आगे बढ़ रहे थे। सुलोचना रणवेश में काले घोड़े पर सवार बाहर निकली। पीछे किंकरी चंवर डुला रही थी। उसके पीछे सहस्र दासियां पैदल चल रही थीं। दासियां कौड़ी-खीलें फेंक रही थीं। गायिकाएं शोकपूर्ण करुण गीत गाती चल रही थीं। रावण घोर क्रन्दन करता हुआ रथ में बैठकर बाहर आया। वह क्षण-क्षण में छाती पीटता और अचेत होता था। उसके पास मेघनाद का शव रखा हुआ था। साथ में धनु, तूणीर, फलक, खड्ग, शंख, गदा, वस्त्र-कवच आदि भी थे। गाने वाले शोकगीत गा रहे थे। राक्षस फूल और स्वर्णमुद्राएं बिखेरते चल रहे थे। सवारी चिता के पास आकर रुक गई।

राक्षस वीर नंगी तलवारें लिए पंक्तिबद्ध खड़े हो गए। ब्राह्मणों ने वेदमंत्र पाठ करके शव को चिता पर रखा। सुलोचना ललाट में सिन्दूर-बिन्दु लगाकर, गले में पुष्पमाला पहनकर चिता पर बैठ गई। यह देख

राक्षस पत्नियां हाहाकार करके रो उठीं। वे रोती हुईं स्वर्णपात्र को भर-भरकर चन्दन, अगर, कस्तूरी, घृत, केसर, पुष्प चिता पर बिखेरने लगीं। ढफ, ढोल, मृदंग, करताल, झांझ, शंख बज उठे।

रावण श्वेत वस्त्र धारणकर मन्त्रियों सहित आगे आया। आकाश में इन्द्र, कार्तिकेय, चित्ररथ, यम आदि देव, गन्धर्व, अप्सराएं, किन्नर भी आए। उनके पीछे दिव्य बाजे बज रहे थे।

सुलोचना ने तीर्थोदक का सिंचन करके आभूषण उतारकर सखियों को दिए। उसने कहा, "अरी, प्यारी सहचरियों ! आज अचानक मेरी जीवन लीला समाप्त होती है। तुम सब दैत्य देश में लौट जाना। अरी वासंती ! पिता से सब कुछ कह देना और माता से कहना कि जो भाग्य में लिखा था, वह हो गया। उन्होंने जिनके हाथों में मुझे दिया था, उन्ही के साथ जा रही हूं।"

ब्राह्मणों ने वेदपाठ आरम्भ किया। मंगलवाद्य बजने लगा और स्त्रियां गीत गाने लगीं। राक्षस तीक्ष्ण बाणों से पशुओं को मार-मारकर चिता के चारों ओर रखने लगे।

शोकाकुल रावण ने आगे बढ़कर कहा, "अरे, मेघनाद ! मैंने आशा की थी कि तुझे राज्यभार दे महायात्रा करूंगा; परन्तु विधाता ने कुछ और ही सोच रखा था। स्वर्ण सिंहासन की जगह पूर्वजन्म के फल से आज तुझे वधू सहित इस आसन पर बैठा देख रहा हूं। हाय, क्या मैंने इसीलिए शिव की आराधना की थी ? हां, पुत्र ! हां, वीर श्रेष्ठ !"

यह कह वह सिर धुनकर रोने लगा। चिता में अग्नि दे दी गई। चिता जल उठी और आग्नेय रथ में स्वर्ण-आसन पर दिव्यमूर्ति इन्द्रजीत सुलोचना सहित स्वर्ग को प्रस्थान करते दीख पड़े। देवगणों ने पुष्पवर्षा की। गगन-भेदी जयजयकार हुआ। अगले दिन सहस्र घड़ों की दुग्धधार से चिता बुझाकर भस्मी सागर में विसर्जित कर दी गई।

पन्द्रह

राम-रावण-युद्ध फाल्गुन मास में आरम्भ होकर चौरासी दिन तक चला, जो रावण-वध के दिन वैशाख कृष्ण अमावस को समाप्त हुआ। इस घोर संग्राम में रावण परिवार के प्रमुख परिजन कुम्भकर्ण, वीरवाहन, मेघनाद क्रमशः युद्ध में मारे गए। कुम्भकर्ण के शोक और परिजनों की यथाविधि अन्त्येष्टि क्रिया के लिए सात दिन तक युद्ध नहीं हुआ। आठवें दिन स्वयं रावण ने राम के साथ निर्णायक युद्ध किया। अन्त में इस

अन्तिम विकट युद्ध में राम द्वारा अमोघ कालबाण से रावण का भी वध हुआ और राम विजयी हुए। तेरह मास सीता लंका में रहीं। युद्ध में मृत योद्धाओं के सब विधि-विधान करा और लंका का राज्य विभीषण को देकर राम सीता सहित अयोध्या लौटे।

अयोध्या के राजमहलों में दुन्दुभी बजने लगी। बहुत लोग राजमहल के प्रांगण में आ-आकर जमा होने लगे। ऋषि वसिष्ठ ने भरत और मंत्रियों सहित वहां पहुंचकर सबको सम्बोधित करके कहा, "सुनो पुरवासियो! आज चौदह वर्ष बाद महाराज राम अयोध्या में आ रहे हैं। जाओ, अपने-घरों को सजाओ, आनन्द मनाओ। हम भरत के साथ उनकी अगवानी को जा रहे हैं। जो चाहे हमारे साथ चले।"

सब जय-जयकार करके चलने को उद्यत हो गए। इसी समय भरत ने हनुमान को आते देखा। भरत ने वसिष्ठ से कहा, "गुरुदेव! हनुमान आ रहे हैं। प्रतीत होता है महाराज नगर के निकट आ पहुंचे। आइए, वानरराज का स्वागत करें। हनुमान के पास आ भरत ने उनका सत्कार करके पूछा, "हनुमान! स्वागत! स्वागत! अब शीघ्र वह प्रिय सन्देश कहो, हमारे प्राण छटपटा रहे हैं। कहो, महाराज राम को कहां छोड़ा?"

हनुमान ने उत्तर दिया, "कुमार की जय हो! आप क्या पुष्पक विमान की आहट सुन नहीं रहे हैं? मेरी समझ में तो महाराज ने शान्ति वन को पार कर लिया। यह देखिए, वह विमान आ गया। महाराज! यही वरुण का प्रसिद्ध पुष्पक विमान है, जिसे श्रीराम ने रावण को मारकर पाया है।"

पुष्पक विमान गूंज करता हुआ आ पहुंचा। सब जय-जयकार करने लगे। वसिष्ठ बोले, "कुमार भरत! देखो, राम पुष्पक से उतर रहे हैं। अरे, ऋषिकुमारो! वेदमंत्र पढ़कर रामभद्र की अभ्यर्थना करो। ब्राह्मणो! आप लोग भी स्तुति कीजिए!"

राम पुष्पक से उतर आगे बढ़े और गुरु वसिष्ठ को देखकर उन्हें प्रणाम करते हुए कहा, "ऋषिवर! यह दास राम आपका अभिवादन करता है।"

"सुखी होओ, रामभद्र! तुम्हारी जय हो!"

"सब माताओं का भी मैं अभिवादन करता हूं।"

सब रानियों ने राम को आशीर्वाद देकर कहा, "चिरंजीव रहो भद्र! तुम्हारी जय हो!"

राम ने तब अन्य गुरुजनों को प्रणाम करके कहा, "सब गुरुजनों का भी मैं अभिवादन करता हूं!" सबने उन्हें आशीर्वाद दिया।

राम ने आगे बढ़ भरत से कहा, "भ्राता भरत ! आओ, छाती से लगो।"

भरत राम से लिपट गए और प्रणाम किया। सीता ने उन्हें आशीर्वाद देते हुए कहा, "सुखी होओ वीर ! तुम्हारी आयु बढ़े ! यश बढ़े !"

लक्ष्मण ने भी सबका अभिवादन किया, "यह दास लक्ष्मण सब गुरुजनों और माताओं का अभिवादन करता है !"

सबने उन्हें आशीर्वाद देकर कहा, "जीते रहो वत्स ! जीते रहो !"

भरत ने राम के पीछे खड़े वीरों को देखकर कहा, "मित्र सुग्रीव, अंगद, विभीषण, नील, हनुमान आओ ! सब मेरी छाती से लगो। आपकी सहायता के बिना महाराज लंका के संकट को कैसे पार कर सकते थे ?।'

"कुमार ! यह सब महाराज की कृपा है कि हमें यह यश मिला।"

भरत ने राम से कहा, "महाराज ! आपका यह राज्य हमारे पास धरोहर था। उसे हमने आपकी इन चरण-पादुकाओं के प्रताप से अब तक रक्षित रखा। अब आप इसे संभालिए।"

"यदि सब गुरुजन भी ऐसा ही चाहते हैं, तो ऐसा ही हो।"

वसिष्ठ बोले, 'सभी की यही इच्छा है भद्र !"

भरत ने शत्रुघ्न से कहा, "प्रिय शत्रुघ्न ! समस्त तीर्थों का जल और अभिषेक की सामग्री ले आओ और पौर वधुओं से कहो कि महाराज की आरती करें।"

नगर, पुर, हाट-बाट, मंदिर, चतुष्पथ, राजप्रासाद सभी स्थान शंखध्वनि के पवित्र नाद से गूंज उठे। राम का राज्याभिषेक सम्पन्न हुआ।

सोलह

अयोध्या के चतुष्पथ पर दो नागरिक बातें करने लगे। एक नागरिक ने दूसरे का अभिवादन करते हुए कहा, 'जय श्रीराम !"

दूसरे नागरिक ने अभिवादन का उत्तर देते हुए पूछा, "अरे भाई ! यह क्या बात है कि आज अयोध्या के राजमार्ग-चतुष्पथ-वीथी सुनसान-से लग रहे हैं ? राक्षसराज रावण का सवंश निधनकर्ता हमारे महाराज श्रीराम के राज्यारोहण के उपलक्ष्य में तो निरन्तर मंगलवाद्य बजते रहने चाहिए, फिर नगर के चतुष्पथ पर आज कीर्तिगायक चारण, वन्दीगण चुप क्यों हैं ?

"तुमने सुना नहीं, महाराज रघुपति ने लंका के युद्ध में मित्रवत् साथ देनेवाले वानरपति महात्मा सुग्रीव और राक्षसराज विभीषण को तथा

राज्यारोहण-समारोह में भेंट-भलाई लेकर आने वाले ब्रह्मर्षियों और राजर्षियों को दान-मान से सत्कृत करके विदा कर दिया है ? इतने दिनों तक उन सबकी प्रतिष्ठा के उपलक्ष्य में सम्पन्न उत्सव आज इसलिए बन्द है।"

"तो वे सब गणमान्य राज-अतिथि विदा हो गए ?"

"वही क्यों, सब राजमाताओं सहित भगवती अरुन्धती और ऋषिवर वसिष्ठ भी राजधानी से चले गए।"

"कहां, कहा ?"

"विभाण्डक ऋषि के पुत्र ऋष्यश्रृंग के आश्रम को। क्या तुम नहीं जानते कि विभाण्डक मुनि के पुत्र ऋष्यश्रृंग राजजामातृ हैं ? राजनन्दिनी शान्ता उन्हीं को ब्याही हैं।"

"हां, हां, सो तो जानता हूं; परन्तु राजगुरु महर्षि वसिष्ठ और भगवती अरुन्धती तथा सब राजमाताएं इस मंगल अवसर पर राजधानी को छोड़कर महात्मा ऋष्यश्रृंग के आश्रम में क्यों गए हैं ?"

"महातपस्वी ऋष्यश्रृंग द्वादशवर्षीय दीर्घ सत्र कर रहे हैं। दिग्दिगन्त के वेदर्षि, देवर्षि, राजर्षि वहां आए हैं।"

"इसी से आज अयोध्या इस प्रकार सूनी-सूनी-सी लग रही है ?"

"हां, भाई ! बस महाराज रघुकुलमणि राम और आर्य लक्ष्मण ही राजधानी में हैं।"

"राजर्षि भरत और आर्य शत्रुघ्न कहां हैं ?"

"सुना नहीं तुमने ? कुम्भीनसी-पुत्र लवणासुर से युद्ध करने आर्य शत्रुघ्न मधुपुरी गए हैं और राजर्षि भरत तो राजकाज रत ही हैं।"

"ठीक है-ठीक है, तो क्या हमारे महाराज रघुकुलमणि राम दीर्घ सत्र में नहीं जाएंगे ?"

"कौन जाने भाई ! यह ऋषिवर वसिष्ठ के वटुक शांडिल्य इधर ही आ रहे हैं। इन्हीं से पूछना चाहिए।"

इसी समय एक युवा ब्रह्मचारी सिर पर बड़ी-सी चोटी, कन्धे पर यज्ञोपवीत, हाथ में कुश और तीर्थोदक लिए वहां आ पहुंचा। यही युवक वसिष्ठ का शिष्य शांडिल्य था। नागरिकों ने उसका अभिवादन किया, "अभिवादन करते हैं ब्रह्मचारी जी !"

ब्रह्मचारी ने दर्भ से तीर्थोदक छिड़ककर आशीर्वाद दिया, "स्वस्ति-स्वस्ति !"

नागरिक ने पूछा, "ब्रह्मचारी ! कहिए, हमारे प्रियदर्शी महाराज रघुकुलमणि राम इस समय कहां हैं ?"

"अहा, भगवती सीता आज खिन्न हैं, क्योंकि उनके पिता राजर्षि विदेह जनक अपनी अयोनिजा प्रिय पुत्री के प्रेम से कोसल राजमहालय में रहकर आज विदेह-राज्य चले गए हैं। इसी से महाराज रघुकुलमणि सब अतिथियों को विदाकर श्रांत-क्लान्त अन्तःपुर में विश्राम करने और भगवती सीता के चित्त को बहलाने के लिए हर्म्य में गए हैं।"

पहले नागरिक ने कहा, "राजमहिषी भगवती सीता अनलपूत हैं, फिर भी अज्ञानी जन उनके चरित्र में दोष बखानते हैं।"

दूसरा नागरिक बोला, "भगवती कुछ दिन राक्षस सदन में रहीं न, इसी से ?"

ब्रह्मचारी ने कहा, "शान्तं पापं, ऐसा मत कहो। कहीं महाराज के कान तक यह अपवाद पहुंच गया तो अनर्थ हो जाएगा। क्या तुम नहीं जानते कि शीघ्र ही अयोध्या वासी मंगल समारोह करेंगे ?"

'ऐसा क्या शुभ समाचार है ?"

ब्रह्मचारी ने कहा, "बड़ों के पुण्य प्रताप और ऋषियों के आशीर्वाद से राजमहिषी की गोद भरने वाली है।"

"अहा, तब तो आनन्द ही आनन्द है।"

"देवता और पितर कृपा करें !"

ब्रह्मचारी ने विदा लेते हुए कहा, 'अच्छा, चलता हूं, इस यज्ञपूत तीर्थोदक से भगवती राजमहिषी सीता का मार्जन कर आऊं, स्वस्तिरस्तु !"

ब्रह्मचारी उन दोनों नागरिकों को 'स्वस्ति' कहकर चल दिया। दोनों नागरिक भी राजमहिषी की गोद भरने की प्रसन्नता में भर अपनी-अपनी राह लगे।

सत्रह

संध्या हो रही थी। राजमहल के पुष्पोद्यान में सीता और राम साथ बैठे प्रकृति का आनन्द ले रहे थे। सरयू का तीर बड़ा भला लग रहा था।

सीता ने राम का हाथ पकड़कर कहा, "महाराज ! आज मैं आपसे न बोलूंगी। दिन-भर यह दासी आंखें बिछाए महाराज की बाट देखती रही और महाराज ने अब दर्शन दिए।"

राम ने प्रेम बिखेरकर उत्तर दिया, "देवी सीते ! राजकाज के झंझट तो ऐसे ही हैं; पर तुम्हारे इस दास के प्राण तो सदा तुम्हीं में अटके रहते हैं।"

"बातें बनाना तो आर्यपुत्र खूब जानते हैं। वह राज्यलक्ष्मी भी प्रेमियों की बैरी है।"

"इसी से तो राजा सब मनुष्यों से निरीह कहलाया है।"

"यह मैं नहीं जानती। मैं तो निरन्तर आर्यपुत्र का सहवास-सन्निध्य चाहती हूं। तनिक भी दर्शनों में देर होती है, तो बीती हुई विरह-व्यथा पीड़ित करने लगती है। आपके शुभदर्शन, शुभहास्य और दिव्यदृष्टि से मुझे जो सुख और तृप्ति मिलती है, वह अकथ्य है। नेत्रों के आगे से सब कुछ लुप्त हो जाता है, आप ही की भव्यमूर्ति रह जाती है।"

"तो प्रिए! मैं तो तुम्हारा ही हूं। तुम मेरे हृदय की रानी हो। सोते-जागते मिलन में, विरह में तुम्हीं से सदा मेरा हृदय पूर्ण रहता है।"

जानती हूं आर्यपुत्र! इसी से तो कभी-कभी मैं घबरा जाती हूं। कहीं विधाता को हमारा यह सुख-साहचर्य असह्य न हो जाए।"

"अहा, ऐसा क्यों सोचती हो वरिष्ठे! देखो, सरयू के सलिल में स्नातपूत होकर शीतल-मन्द-सुगन्ध बयार हमें कैसा प्रिय सन्देश दे रही है! चन्द्रमा के अमृत को पानकर चकोर कैसा मत्त हो रहा है! यह पत्तों की कोमल मर्मरध्वनि, पुष्प-पराग की महक हमारी इस मिलन-यामिनी पर मुग्ध हैं। देखो, तो यह वसुधा आज कैसी मधुमयी दीख रही है।"

"वे दिन भी आज याद आते हैं आर्यपुत्र! जब रात इसी भांति चन्द्र-ज्योत्स्ना से उज्ज्वल हो जाती थी और गोदावरी तट पर की उस पर्णकुटी में मैं आपके सुखद अंक में सो जाती थी!"

"तो प्रिए! तुम्हें क्या आज इस राजमहालय की अपेक्षा वह पर्णकुटी अधिक प्रिय प्रतीत हो रही है?"

"मुझे तो केवल आपका सान्निध्य-सुख प्रिय है। राजमहालय हो या पर्णकुटी। जहां आपके पावन चरण हैं, स्निग्धदृष्टि है, स्नेहसिक्त वक्ष है, वही स्थान मुझे प्रिय है। मैं तो इन फूलों में आप ही को देखती हूं, पत्तों की मर्मर ध्वनि में आप ही का कण्ठस्वर सुनती हूं, चन्द्रमा की चांदनी में आप ही की छवि माधुरी देखती हूं।"

"प्रिय! मैं भी अखिल विश्व को सीतामय देखता हूं।"

"जब मैं लंका में थी, तब एक पल एक युग के समान कटता था। उस समय भी चन्द्रमा इसी तरह आकाश में उदय होता था, तब ऐसा प्रतीत होता था मानो विश्व में आग लग गयी है। मलय वायु के स्पर्श से मैं सिहर उठती थी। हृदय में दिन-रात दाह होता था। रात जैसे बीतने ही न पाती थी और प्रत्येक सूर्योदय एक नई निराशा मन में जाग्रत करता था। कोकिल जैसे मेरा उपहास करती थी।"

"अहा, प्रिये सीते ! यही दशा तो मेरी थी ! मलयानिल मेरे शरीर में बर्छियां मारता था। मैं वृक्षों से, पर्वतों से, नदियों से, पक्षियों और हिंस्र जन्तुओं से भी तुम्हारा पता पूछता हुआ एक वन से दूसरे वन में, दूसरे वन से तीसरे वन में भटकता फिरता था। हाय, वे दुर्दिन भी कैसे असह्य थे !"

"मैं तो अब भी उन दिनों को याद करके भय से कांप उठती हूं।"

"अब भय क्या है प्रिये ! अब तो तुम मेरे निकट हो। बीती बातों को अब भूल जाओ।"

"चाहकर भी नहीं भूल पाती हूं। न जाने क्यों, मेरा मन उन्हीं दुर्दिनों की ओर दौड़ जाता है। आर्यपुत्र घड़ी-भर के लिए भी मेरी आंखों से ओट होते हैं, तो मैं व्याकुल हो जाती हूं।"

"भीरु ! यह शंका अपने मन से दूर करो। अरे, रोने लगीं। तुम्हारी आंखें डबडबा आईं लाओ, मैं तुम्हारे आंसू पोंछ दूं।"

"सब माताएं और गुरुजन भी तो राजधानी से चले गए। आज पिता ने भी मुझसे मुंह मोड़ लिया। अब तो केवल आप ही मेरे प्राणाधार रह गए। न जाने कैसा सूना-सूना लग रहा है !"

"धीरज धरो जनकनन्दिनी ! गुरुजन हमें छोड़ थोड़े ही सकते हैं; पर कर्तव्यवश तो सब कार्य करने ही पड़ते हैं।"

"आर्यपुत्र मैं जानती हूं, पर प्रिय बन्धुओं का बिछोह मुझसे सहा नहीं जाता।'

"प्रिये ! यही हृदय के मर्म को छेदने वाले संसार के झंझट हैं, जिनसे घबराकर लोग वन की शरण लेते हैं।"

"अच्छा, कहिए, शुभ समाचार सुनाने पर आप किसी को क्या देते हैं ?"

"दान और भेंट तो पात्र को देखकर ही दिया जाता है। तुम्हारा शुभ समाचार कैसा है प्रिये !"

"बहुत ही शुभ है।"

"तो उसके लिए यह प्राण और शरीर भी दिया जा सकता है।"

"इसे तो महाराज कई बार इस दासी को दे चुके हैं। अब और कितनी बार देंगे ?"

"प्रिये ! भिखारी राम के पास और क्या है ?"

"वाह महाराज ! आप अयोध्या के इतने बड़े प्रतापी महाराज होकर भी अभी भिखारी बने हैं !"

"देवी ! राजा का अपना कुछ भी नहीं होता। जो कुछ है वह प्रजा

का है, इसीलिए राजा दुनिया का सबसे बड़ा भिखारी होता है।"

"महाराज ! मुझे राजनीति की इन बातों से कुछ मतलब नहीं। मैं आपको शुभ समाचार सुनाऊंगी, आप मुझे उसका पुरस्कार दीजिए।"

"क्या पुरस्कार प्रिए !"

"मुंह मांगा पुरस्कार।"

"अच्छी बात है। कहो, शुभ समाचार क्या है ?"

"कैसे कहूं ?"

"अरे, लजाने लगीं ? क्या बात है प्रिये !"

"महाराज !"

"कहो कहो, अरे, तुम्हारा मुंह लाल हो गया ? कहीं हमारी गोद तो भरने वाली नहीं है ?"

"बड़ों के पुण्य-प्रताप और ऋषियों के आशीर्वाद से ऐसा ही है।"

"सच ?"

"हां, आर्यपुत्र !"

"प्यारी ! तो हमारी जन्म-भर की आस अब पूरी हुई है ?"

"हां, आर्यपुत्र !"

"अहा, वह दिन कब आएगा, जब मैं अपने पुत्र को हाथों खिलाऊंगा ?"

"बहुत जल्द आर्यपुत्र !"

"सीते ! कहो आज तुम्हें क्या दूं ?"

"महाराज ! आपका प्यार संसार की सबसे बड़ी वस्तु है, वह मुझे पहले ही मिला हुआ है। अब मुझे और क्या चाहिए ?"

"धन्य प्रिये ! इसी से लोग तुम्हें प्रियम्वदा कहते हैं।"

सेवक ने आकर सूचना दी कि मुनिवर ऋष्यशृंग के आश्रम से अष्टावक्र मुनि आए हैं। राम ने उन्हें विधिवत अर्घ्यपाद्य से सत्कृत करके लाने की आज्ञा दी। अष्टावक्र के आने पर राम ने उन्हें प्रणाम करके कहा, "मैं राम आपका अभिवादन करता हूं !"

सीता ने भी प्रणाम किया, "मैं जनकसुता सीता आपका अभिवादन करती हूं !"

अष्टावक्र ने आशीर्वाद दिया, "जय हो महाराज रघुकुलमणि ! कल्याण हो भगवती महिषी जनकनन्दिनी !"

राम बोले, "यह आसन है, विराजिए।"

उनके आसन पर बैठने पर ही सीता ने पूछा, "कहिए, ऋषिवर ! हमारी सास और ननद शान्ता प्रसन्न तो हैं ?"

राम ने भी पूछा, "सोमपान करने वाले हमारे बहनोई ऋष्यश्रृंग और आर्या शान्ता विघ्नरहित तो हैं ?"

अष्टावक्र ने उत्तर दिया, "हां, सब भांति कुशल-मंगल है।"

सीता ने पूछा, "हमें कभी याद भी करते हैं ?"

"देवी ! भगवान वसिष्ठ ने कहा है कि आप अयोनिजा भूमिसुता हैं, जो जगत का भार धारण करती है। आपके पिता विदेह जनक राजर्षि हैं और प्रतापी सूर्यकुल की आप बहू हैं, जिसके हम कुलगुरु हैं। इस प्रकार आप सब भांति भाग्यशालिनी हैं। अब आप वीरमाता बनें ! यही हमारा आशीर्वाद है।"

"भगवान वसिष्ठ के हम अनुगृहीत हुए।"

"राम ने कहा, "साधुजनों के वचन सार्थक होते हैं। उनसे धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष की सिद्धि होती है।"

"भगवती अरुन्धती और शान्ता देवी ने बारम्बार यह सन्देश कहला भेजा है कि गर्भावस्था में भगवती सीता की जो कुछ साध हो, वह बिना विलम्ब तुरन्त पूरी करना।"

राम ने उत्तर दिया, "ऐसा ही होगा।

अष्टावक्र ने कहा, "भगवती सीता के ननदोई मुनिवर ऋष्यश्रृंग ने देवी के पास यह सन्देश भेजा है कि देवी के पूरे महीने चल रहे हैं, इसलिए यहां आने का कष्ट आपको नहीं दिया गया और रामभद्र को भी आपके चित्तविनोदार्थ छोड़ दिया गया है। सो, जब आपकी गोद पुत्र से सुशोभित होगी, तब हम ही आकर भेंट करेंगे।"

राम ने हर्ष और लाज से कहा, "कृपा है। भगवान वसिष्ठ की और क्या आज्ञा है ?"

"महर्षि ने कहा है कि हम तो यहां यज्ञ में फंसे हैं। आप वहां शिशु राजकुमार को प्राप्त करके सन्तानवत प्रजा का पालन करिए, जिससे संसार में यशवृद्धि हो।"

"जैसी भगवान वारुणि की आज्ञा। उनसे कहना कि जनमन के अनुरंजन के लिए मैं राज्य और प्राणाधिक जानकी को भी त्यागने में आगा-पीछा न करूंगा।"

इसीलिए तो आर्यपुत्र रघुवंशमणि कहाते हैं।"

राम ने निवेदन किया, "ऋषिवर अब आप विश्राम कीजिए।"

उन्होंने सेवक को आज्ञा दी कि मुनि को ले जाकर विधिवत् अर्चना से सत्कृत कर विश्राम कराये।

मुनिवर स्वस्ति कहकर उठ खड़े हुए। उनके जाने पर राम सीता से

बोले, "प्रिये ! अब हमारी आंखें अपने पुत्र को देखकर तृप्त होंगी।"

सीता ने सहास्य उत्तर दिया, "हां, आर्यपुत्र !"

इसी समय लक्ष्मण हाथ में कुछ चित्र लेकर वहां आये।

सीता ने पूछा, "देवर जी ! यह क्या लाये हो ?"

लक्ष्मण ने पास आकर कहा, "देखिए, भाभी ! कैसे अच्छे चित्र बने हैं। इनमें हमारे सम्पूर्ण जीवन की कथा आ गई।"

राम ने कहा, "भ्राता लक्ष्मण ! देवी के मन को रिझाने के तुम्हें खूब ढंग आते हैं। देखें, कैसे चित्र हैं ? अरे, यह तो जनकपुरी की छवि है।"

सीता ने उन्हें प्रशंसित दृष्टि से देखते हुए कहा, "अहा, आप नये फूले हुए कमल के समान चुपचाप महात्मा विश्वामित्र के पास खड़े हैं और देवर जी भी कैसे सलोने बने हैं। देखिए, पिता जी अचरज में भरकर आप का रूप निहार रहे हैं।"

लक्ष्मण ने इंगित करके कहा, "देखिए, भाभी ! यह आपके पिता गुरु वसिष्ठ की पूजा कर रहे हैं, विवाह का मण्डप सजा है। राजा-रानी, ऋषि-मुनि, देव-गन्धर्वों की भीड़ लगी है। यह आप हैं, यह भाभी मण्डवी हैं, यह बहू श्रुतिकीर्ति है।"

सीता ने विनोद से पूछा, "देवर जी ! यह चौथी कौन है ?"

"उसे जाने दीजिए। यह देखिए, परशुराम जी हैं।"

"मैं डर गई।"

राम दूसरी तस्वीर देखकर बोले, "अरे, यह तो अयोध्या की उस समय की छवि है, जब हम विवाह करके लौटे थे। कैसी आनन्द-बधाइयां बज रही हैं।"

राम की आंखें गीली हो गयीं। यह देख सीता ने कहा, "आह, महाराज की आंखों में आंसू क्यों आ गए ?"

"देवी ! पिता की छवि देख उनके चरणों की याद आ गई। हाय, वे चरण अब कहां ?"

लक्ष्मण ने विषय बदलकर कहा, "यह मन्थरा और मझली माता है।"

राम दूसरा चित्र देखकर बोले, "अहा, इस चित्र में गंगा की धारा कैसे बह रही है, ऋषियों के आश्रम कैसे भले मालूम देते हैं !"

लक्ष्मण ने कहा, "धन्य महाराज ! आपने मझली मां का चित्र तो देखा भी अनदेखा कर दिया।"

"उसे जाने दो भाई। यह देखो, चित्रकूट की राह में यही वह बड़ का पेड़ है, जिसे भरद्वाज मुनि ने पाला-पोसा था। देखो, यमुना के जल में

इसकी परछाई कैसी कांपती हुई-सी दीख रही है।"

सीता ने पूछा, "क्या आर्यपुत्र की अभी तक इसकी स्मृति बनी है ?"

"भला, इसे मैं भूल सकता हूं क्या ? इसी के नीचे बैठकर तो मैंने तुम्हारे पैरों से कांटा निकाला था और तुमने भी अपने आंचल से मेरे मुंह का पसीना पोंछा था। अरे, देवी ! तुम रोने क्यों लगीं ?"

"महाराज ! उस दुःख में भी कैसा सुख था ? राज्य का यह बोझ तो जैसे हमें दबा डालता है। महाराज ! मेरे मन में एक साध पैदा हुई है।"

"कैसी साध देवी !"

"मैं चाहती हूं कि एक बार फिर वन में विहार करूं और जंगल में नदी के जल में किलोलें करूं। अहा, वे दिन भी कैसे प्यारे थे, जब चांदनी रात में गोदावरी के किनारे हमारी कुटिया थी ! फूल हमें देखकर हंसते थे, हवा हमसे अठखेलियां करती थी, तारे हमपर झांक-झांककर मुस्कराते थे, चम्पा और चमेली की कलियों से भरी डालें झूम-झूमकर हमें पास बुलाती थीं।"

"सीते ! राजमहल के यह महाभोग पाकर भी आज तुम्हें उनकी याद आ रही है ?"

"महाराज ! यह राजमहल, गहने, हीरे, मोती, दास, दासी जैसे हमारे ऊपर बोझ हैं। तब हम और आप बिलकुल पास-पास थे।"

"और अब ?"

"अब राजनीति हमारे-आपके बीच आ गई है। महाराज ! मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि हम लोग पल-पल में दूर हो रहे हैं। वहां हम एक थे, यहां आते ही दो हो गए। आप हो गए राजा, मैं हो गई रानी। राज-काज आपको न जाने कहां-कहां खींच ले जाता है और इस अवरोध के भीतर मैं हीरे-मोतियों की शृंखला से बंधी पड़ी रहती हूं।"

"प्रिये ! ऐसा क्यों सोचती हो ?"

"आर्यपुत्र ! एक पल को भी आपसे दूर रहने पर मेरा दिल धड़कने लगता है।"

"सीते ! मैंने बड़े कष्ट से तुम्हें पाया है। अब मैं तुम्हें सदा अपने हृदय में रखूंगा।"

"तो चलिए, आर्यपुत्र ! एक बार फिर वन का आनन्द उठाया जाए, ऋषियों का दर्शन करके उनका आशीर्वाद लिया जाए।"

यह सुन राम हंस दिए, फिर बोले, "ऐसी इच्छा है तो लक्ष्मण कल ले जाकर तुम्हारा वन-विहार करा लाएंगे प्रिये !"

"और आप ?"

"तुम तो कह ही चुकी हो कि राजा को विश्राम कहां ? भाई लक्ष्मण, कल भोर होते ही रथ जोतकर देवी को गंगातीर के ऋषियों का दर्शन करा लाओ।"

लक्ष्मण ने उत्तर दिया, "जो आज्ञा महाराज !"

"महाराज ! मैं ऋषियों के पुनीत आश्रमों में राजसी आडम्बर से नहीं जाऊंगी। सेना-परिच्छद की कुछ आवश्यकता नहीं है। अकेले देवर जी ही ठीक हैं।"

"यही युक्तियुक्त भी है। ऐसा ही होगा। अच्छा प्रिये ! अब तुम शयनकक्ष में जाकर विश्राम करो। मैं थोड़ा राजकाज निबटा आऊं। और लक्ष्मण ! तुम देवी की रुचि के अनुकूल ही व्यवस्था करना। जाओ, रथ तैयार करने की आज्ञा दे आओ।"

अठारह

सीता के पास से लौटकर राम अपने कक्ष में आ बैठे। इस समय उनके मन में सीता रमी हुई थीं। वे सोच रहे थे कि सीता प्राणों से प्रिय है, ये प्रिय भाव उसने अपने गुणों से और बढ़ा लिए हैं। भाग्य ही से ऐसी पत्नी मिली है और भाग्य ही से कोसलराज को ऐसी महिषी। अब उसके गर्भ से कोसल राजवंश को वंशधर अधिकारी का जन्म होगा, जिससे मेरा और मेरे पूर्वजों का यश बढ़ेगा। उनकी इस प्रिय विचारधारा में बाधा पड़ी। एक प्रतिहारी ने आकर उन्हें अभिवादन किया और चर दुर्मुख के आने की सूचना दी।

राम ने कहा, "वह राजकाज में नियुक्त है, उसे यहीं भेज दो।"

"जो आज्ञा महाराज !" कह प्रतिहारी चला गया।

कुछ क्षण बाद दुर्मुख ने आकर अभिवादन किया, "महाराज की जय हो !"

"कहो, भाई ! नगर के क्या समाचार हैं ?"

"सब नगर-निवासी सुखी हैं। वे महाराज की जय-जयकार मनाते हैं।"

"वे क्या कहते हैं, विस्तार से कहो।"

"कहते हैं, महाराज ने अपने गुणों से स्वर्गवासी महाराज दशरथ को भुलवा दिया।"

"यह तो प्रशंसा हुई। कुछ हमारी बुराइयां भी बताओ।"

"महाराज !"

"कहो, निर्भय कहो।"

"कैसे कहूं महाराज !"

"कहो, भाई ! तुम्हारी राजसेवा यही है कि जो कुछ प्रजा में सुनो, सच-सच अपने राजा से कहो।" यह सुन दुर्मुख सिर नीचा करके रोने लगा।

राम बोले, "अरे, तुम रोते हो, ऐसा क्या समाचार है ?"

"महाराज ! मुझे बन्दी बना लीजिए। मैं चर का काम नहीं कर सकता।"

"कहो, सब कुछ निर्भय कहो।"

"नगर का धोबी है न ?"

"धोबी, उसे क्या दुःख है ?"

"उसकी स्त्री बिना उससे कहे पीहर चली गई थी।"

"उसे पति की आज्ञा लेनी चाहिए थी।"

"महाराज ! जब वह लौटकर दूसरे दिन आई, तो धोबी ने उसे बहुत पीटा।"

"बड़ा बुरा किया। स्त्री को पीटना ..।"

"और कहा ।"

"क्या कहा ?"

"महाराज कैसे कहूं ?"

"कहो, क्या कहा ?"

"कहा, क्या मुझे भी राम समझ लिया है कि जिसने राक्षस के घर में रही स्त्री को घर में रख लिया ?"

"अहाह, यह कहा ?"

"महाराज ! दास का अपराध क्षमा हो।"

"तुम्हारा दोष नहीं है। अच्छा, तुम जाओ।"

चर दुर्मुख के चले जाने पर राम गहरे विषाद में डूब गए। उन्होंने मन-ही-मन कहा, 'अरे, हृदय ! तू फट जा ! साध्वी सीता अब जन-जन की आलोचना की वस्तु हो गई। अरे, अयोध्यावासियो ! मैंने तो सदा तुम्हारी मनचाही की, कभी धर्म न छोड़ा। अब तुम साध्वी सीता को मुझ से अलग किया चाहते हो ? मेरी पसलियां तोड़ लो, मेरी नस-नस खींच लो, पर मेरी सती सीता को, महाभागी जनक दुलारी को अयोध्या की राज-लक्ष्मी को मुझसे दूर न करो। अरे, तुम सीता को मुझसे अधिक कहां जानते हो ? अथवा मुझे ही नीच समझते हो ? नहीं, मैंने सदा अपनी बलि दी और अब सबसे बड़ी बलि दूंगा। प्रजा के लिए गर्भवती सीता को त्याग

दूंगा हाय, वह राजप्रासाद में मेरी प्रतीक्षा कर रही होगी। प्रातःकाल वह उमंग में भरी गंगातीर जायेगी, पर फिर वहां से लौटकर न आएगी। सीते ! अरी, जनक की दुलारी ! तेरा भाग्य कैसा है ? पापी राम की स्त्री बनने का फल पा। हाय रे, राजधर्म ! अरे, हृदय ! पत्थर का बन। मैं प्रजा का अपवाद नहीं सुन सकता। अच्छा, मैंने अपनी प्राणाधिक निरपराध सीता को त्यागा, जिसे ढूंढ़ते हुए लंका तक गया, समुद्र पर पुल बांधा और जिसके लिए रावण को मारा। राजा ! राजा ! यह राजपद सोने की बेड़ी है। यह सिंहासन विष का भरा प्याला है। राजा एक ऊंचे पहाड़ की चट्टान है, जिसकी ऊंचाई से लोग डाह करते हैं, जो गर्मी में अकेला तपता है और जाड़ों में बर्फ में ठिठुरता है। अब समझा, राजा बनने के लिए मनुष्य की आत्मा नहीं, राक्षस की आत्मा चाहिए।

उन्होंने द्वारपाल को पुकारकर लक्ष्मण को बुला भेजा।

लक्ष्मण आकर उनके समक्ष खड़े हुए। आहट पाकर राम ने आंख उठाकर उन्हें देखा और फूट-फूटकर रोने लगे।

लक्ष्मण ने कहा, "अरे, किसने महाराज को दुःखित किया ? सेवक के रहते कौन महाराज को दुःखी कर गया ? देव ! गन्धर्व, राक्षस और मनुष्य जो अपराधी होगा, उसे मैं जीता नहीं छोड़ूंगा। अरे, महाराज मूर्च्छित हो गए ? दौड़ो·· !"

परन्तु राम शीघ्र ही होश में आ गए। बोले, "नहीं, भैया ! मैं अच्छा हूं। लक्ष्मण ! अधीर मत होना।"

"महाराजा क्या कह रहे हैं ?"

"हां, ठीक है। तनिक सहारा देकर बिठा दो भाई ! तुम क्या कहते हो लक्ष्मण ! राजा न किसी का भाई, न पति, क्यों ?"

"क्यों महाराज !"

"भ्राता लक्ष्मण ! तुम मुझे सदा महाराज ही कहते हो। भैया नहीं कहते।"

"आप महाराज तो हैं ही।"

"अच्छी बात है। तो लक्ष्मण ! एक राजाज्ञा है।"

"कौन-सी आज्ञा ?"

"बिना विलम्ब पालन करना होगा।"

"जो आज्ञा महाराज !"

"सुनो।"

"कहिए।"

"कल सूरज निकलने से पहले देवी सीता को·· ।"

"वन ले जाना होगा ?"

"हां, गंगा के उस पार ऋषि वाल्मीकि के आश्रम में···।"

"यह आज्ञा तो सुन चुका हूं महाराज !"

"वह राजाज्ञा नहीं थी लक्ष्मण ! वह तो पत्नी की विनोद-इच्छा पति ने पूरी की थी।"

"और यह ?"

"सुनो।"

"कहिए।"

"गंगा के उस पार···।"

"भगवान वाल्मीकि के आश्रम में···।"

"नहीं-नहीं। आश्रम के पास, देवी सीता को छोड़ आओ।"

"छोड़ आऊं ?"

"हां।"

"क्यों महाराज !"

"यह राजाज्ञा है।"

"महाराज !"

"अब कुछ मत पूछो लक्ष्मण !"

"क्या महाराज ने देवी सीता को त्याग दिया ?"

"हां।"

"उनका अपराध ?"

"यह न पूछो।"

"महाराज ! आप गर्भवती महारानी को त्याग रहे हैं ?"

"मैं आज्ञा दे चुका लक्ष्मण !"

"दुहाई महाराज की ! मैं विद्रोह करूंगा।"

"राजाज्ञा हो चुकी, तुम्हें इसका पालन करना होगा।"

"महाराज ! मुझे मार डालिए।"

"लक्ष्मण ! राजाज्ञा का पालन करो।"

"महाराज !"

"जाओ भ्राता सूरज निकलने से पहले। समझ गए न।"

लक्ष्मण ने छाती में घूंसा मारकर चीखकर कहा, "सूरज निकलने से पहले मैं मर जाऊं तो अच्छा।" लक्ष्मण के आंसुओं का वेग उमड़ पड़ा और वे आंखें पोंछते वहां से चले गए।

अगले दिन प्रातः उषा का उदय होने लगा। राम अपनी शय्या पर अधोमुख लेटे हुए थे। सीता उनकी बांह पर सिर रखकर सो रही थीं।

सीता के उज्ज्वल मुख को निहारकर राम सोचने लगे, 'जिस देवी को अग्नि ने शुद्ध किया और जिसके गर्भ में पवित्र रघुकुल का उत्तराधिकारी है, उसे मैं एक नगण्य प्रजाजन के अपवाद से त्याग रहा हूं। हाय, पर-मन्दिर वास का दूषण मैथिली के भाल से टल नहीं सका। अग्निपरीक्षा होने पर भी प्रवाद नहीं गया। अब मैं भाग्यहीन क्या करूं अथवा अपना यह अभिशप्त जीवन त्याग दूं ? किन्तु मैंने तो जन-मन-अनुरंजन का व्रत ग्रहण किया है। व्रतपालन करने में ही पितृवर ने प्राण दिए। मैं राम उनका पुत्र क्या ऐसा अधम हूं कि व्रतभंग करूंगा ? अरे, अभी ही तो भगवान वसिष्ठ ने संदेश भेजा है। अहा, क्या मेरे कारण यह हमारा पवित्र इक्ष्वाकु कुल दूषित होगा ? नहीं-नहीं, ऐसा नहीं हो सकेगा। हां, मैथिली ! अयोनिजा ! निष्पाप भूमिकुमारी ! अपने जन्म से संसार को प्रसन्न करने वाली ! विदेह जनक की नेत्रज्योति ! भगवती अरुन्धती और वसिष्ठ द्वारा प्रशंसित चरित्र ! हा राम की प्राणप्रिया ! अरी, महावन की संगिनी ! सखी ! प्राणाधिक प्रिया ! मृदु भाषिणी ! तेरा ऐसा भाग्य ! अरी, तूने संसार को पवित्र किया, तो भी मनुष्य तेरे प्रति अपवित्र बात कहते हैं ? अरी, समाज को सनाथ करने वाली ! मुझ अयोग्य पति के रहते तू आज अनाथ होने वाली है। हाय-हाय, यह निष्पाप तो सुख से मेरी बांह का सहारा लिए सो रही है। यह नहीं जानती, मैं क्रूरकर्मा पति हूं। अस्पृश्य हूं, तो क्यों अपने स्पर्श से इस पवित्रात्मा को अपवित्र करूं ?' उन्होंने धीरे से बांह सीता के सिर के नीचे से निकाल ली और उठ खड़े हुए। बाहर आकर सेवक को आवाज दी।

दुर्मुख आकर उपस्थित हुआ और प्रणाम करके बोला, "महाराज की जय हो ! आर्य लक्ष्मण की आज्ञा से मैं राजाज्ञा पालने के लिए उपस्थित हूं।"

परन्तु राम ने उसकी ओर नहीं देखा। वह अभी भी अपनी विचार-धारा से द्वन्द्व कर रहे थे, 'हाय, जीवलोक पलट गया, राम का जन्म लेने का प्रयोजन भी पूरा हो गया। संसार विदग्ध वन के समान सूना हो गया, संसार में कुछ सार न रहा। हा, माता अरुन्धती ! हा, भगवान वसिष्ठ ! हा, मुनि विश्वामित्र ! हा, अग्निदेव ! हा, पिता जनक ! हा, पिता दशरथ ! हा, माता ! हा, उपकारी मित्र लंकेश विभीषण ! हा, प्रिय सखा सुग्रीव ! हा, मारुति ! हा, त्रिजटे ! इस वंचक अधम राम ने तुम सबको ठग लिया अथवा अब यह राम तुम्हें मुंह दिखाने योग्य न रहा। हा-हा-हा-हा, अरी, भोली सीते ! तू विश्वास करके मेरे अंक में निश्चिन्त सो गई, सो मैं वंचक निर्दय तुझे चुपचाप सोती छोड़कर चोर की भांति

बाहर निकल आया। भला कौन पति. विश्व में ऐसा निर्दयी होगा, जो आसन्नप्रसवा-निष्पाप पत्नी को वनचरों के बीच छोड़ दे ? हा-हा-हा।'

दुर्मुख ने फिर निवेदन किया, "महाराज ! सेवक राजाज्ञा की बाट जोह रहा है।"

अब राम सचेत हुए। उन्होंने कहा; "जा, भद्र ! राजाज्ञा पालन कर, राजाज्ञा हो चुकी। हा, देवी सीते ! तुम कैसे जीवित रहोगी ? भगवती वसुन्धरे ! अपनी पुत्री की रखवाली करना। तुम्हीं ने जनक और रघुकुल की वंश-उजागरी सीता को जन्म दिया।" इसी पीड़ा से विदग्ध राम व्याकुल भाव से वहां से चल दिए।

सीता ने जागकर देखा, राम शय्या पर नहीं हैं। उसने उठकर कहा, "सौम्य आर्यपुत्र ! कहां हो ? हा, धिक-धिक ! दुःस्वप्न के धोखे में मैं आर्यपुत्र का नाम लेकर चिल्ला उठी ! अरे, सचमुच ही मुझ अकेली को सोती छोड़कर आर्यपुत्र चले ही गए। यह राजकाज भी व्यसन है। इस बार यदि उन्हें देखकर अपने वश में रह सकी, तो अवश्य कोप करूंगी।" सीता ने दासी को आवाज दी।

दुर्मुख ने उपस्थित होकर कहा, "वह रेवक है महारानी ! राजमहिषी की जय हो ! आर्य लक्ष्मण प्रार्थना करते हैं कि रथ प्रस्तुत है, सो देवी चलकर उस पर चढ़ें।"

"अच्छा, भद्र ! ठहर, गर्भभार से मैं शीघ्र नहीं चल सकती, धीरे-धीरे चलूंगी।"

"इधर से आइए देवी ! इधर से।"

सीता ने शय्या से उठकर पूर्व दिशा की ओर मुख करके प्रातः नमन करते हुए कहा, तपस्वी जनों को प्रणाम ! गुरुकुल के देवताओं को प्रणाम ! आर्यपुत्र के चरणकमल में प्रणाम ? में सब गुरुजनों को प्रणाम करती हूं !" फिर दुर्मुख से बोली, "चल, भद्र ! रथ किधर है ?"

"इधर से देवी ! इधर से।"

उन्नीस

रथ चलते-चलते मध्याह्न हो गया। गंगा के किनारे वाल्मीकि आश्रम के पास पहुंचकर सीता ने लक्ष्मण से कहा, "लक्ष्मण ! आज मैं कितनी प्रसन्न हूं !"

"हां, भाभी !"

"पर तुम तो बड़े उदास हो।"

"क्या, मैं ? नहीं तो ? अब, उतरिए। महात्मा वाल्मीकि का आश्रम आ गया।"

"क्या सच ? अहा, ऋषि के दर्शन करके आज आंखें तृप्त होंगी।"

"हां, भाभी !"

"उधर एकटक तुम क्या देख रहे हो ? देखो, गंगा कलकल करती बह रही है।"

"हां, भाभी !"

"और ऋषियों की कुटियों से होम का धुआं कैसा उठ रहा है ! ब्रह्मचारी वेदपाठ कर रहे हैं। उनकी ध्वनि कैसी प्यारी लग रही है !"

"हां, भाभी !"

"मैं आज गंगा में खूब विहार करूंगी। सुन रहे हो न लक्ष्मण !"

"हां, भाभी !"

"अरे, तुम किस सोच में खड़े हो लक्ष्मण ! आओ, इस पत्थर पर थोड़ा बैठकर आराम कर लें।"

"भाभी ! अब मैं जाऊंगा।"

"जाओगे ? कहां जाओगे ?"

"अयोध्या को।"

"अयोध्या को ?"

"हां, भाभी !"

"वाह, देवर जी ! आये देर न हुई कि अभी जाओगे। मैं तो आज दिन-भर वन में विहार करूंगी। वाह, भला वन का यह सौन्दर्य महलों में कहां ?"

"यहां आपका मन लग जाएगा भाभी !"

"मुझे बहुत अच्छा लग रहा है, पर ऐं, यह दाहिनी आंख क्यों फड़क रही है ?"

"भाभी ! महात्मा वाल्मीकि के आश्रम की सीधी राह यह है।"

"देख तो रही हूं, परन्तु हम वहां गंगा स्नान करके चलेंगे।"

"तो भाभी ! मुझे आज्ञा दीजिए।"

"कैसे अच्छे फूल खिले हैं ! कैसी भीनी महक फैल रही है, देवर जी !"

"हां, भाभी !"

"हम महाराज के लिए बहुत-से फूल ले चलेंगे।"

"भाभी ! अब मैं जाऊंगा।"

"कहां, देवर जी !"

"अयोध्या को।"

"अभी हम नहीं चलेंगे।"

"पर मैं जाऊंगा, भाभी।"

"और मैं ?"

"आप यहीं रहेंगी।"

"मैं ?"

"हां, भाभी !

"अकेली ?"

"महात्मा वाल्मीकि का आश्रम ता पास ही है।"

"तुम्हारा अभिप्राय क्या है ?"

"महाराज की आज्ञा है।"

"क्या आज्ञा है ?"

"कैसे कहूं, भाभी !"

"कहो लक्ष्मण ! मैं आज्ञा देती हूं।"

"महाराज की यही आज्ञा है कि देवी सीता को वन में महात्मा वाल्मीकि के आश्रम के पास छोड़ आओ।"

"छोड़ आओ ?"

"हां, भाभी !"

"किसलिए ?"

"मैं नहीं जानता।"

"महाराज ने क्या दासी को त्याग दिया ?"

"मैं नहीं जानता ?"

"तो तुम मुझे इस वन में अकेली छोड़कर चले जाओगे ?"

"महाराज की यही आज्ञा है।"

"अकेली वन में छोड़ जाने की ? मुझ गर्भिणी को ?"

"देवी ! विपत् में धैर्य ही रक्षा करता है।"

"अयोध्या के वे राजमहल, आर्यपुत्र की वे प्यारी बातें, इतनी जल्दी स्वप्न हो जाएंगी ?"

"भाभी ! मेरा हृदय फटा जा रहा है।"

"रोते हो लक्ष्मण ! छि: !"

"भाभी !"

सीता ने रुष्ट और उत्तेजित होकर कहा, "जाओ तुम अयोध्या को। आर्यपुत्र से कहना···।"

"क्या ?"

"कहना, अभागिनी सीता ने कहा है कि जब पहले राज्यलक्ष्मी आपकी गोद में आई थी, तब मैं आपको वन में ले भागी थी। अब राज्यलक्ष्मी की बारी है कि उसने मुझे आपसे दूर करके वन में भगा दिया है। इसमें आपका दोष नहीं, मेरे ही भाग्य का दोष है। मैं आपके बिना कभी न रहती, तुरन्त प्राण त्याग देती; पर आपका तेज मेरे शरीर में है, इसलिए पुत्र के जन्म लेने तक मैं सूर्य में दृष्टि लगाकर तप करूंगी कि जिससे फिर मुझे आप ही पति मिलें।"

"धन्य भाभी ! अब मैं जाऊं ?"

"जाओ, आर्यपुत्र से कहना, सीता के सब अपराध क्षमा हों।"

"भाभी ! मेरा मन हाहाकार कर रहा है।"

"देवर ! राजधर्म बड़ा कठोर है और भाग्य उससे भी अधिक।"

"भाभी !" कहते-कहते लक्ष्मण मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़े।

सीता विलाप कर उठीं, "अरे, मूर्च्छित होकर गिर गए। अब मैं क्या करूं ?"

परन्तु लक्ष्मण की मूर्च्छा शीघ्र ही दूर हो गई। उन्होंने कहा, "नहीं भाभी ! मैं अब ठीक हो गया। मैं चला।"

सीता ने नयनों में छलकते नीर को रोककर कहा, "जाओ, तुम्हारा मार्ग शुभ हो !"

"भाभी ! वन के देवता तुम्हारी रक्षा करें ! अभिवादन करता हूं !"

"सुखी रहो ! सुनो, आर्यपुत्र के चरणों में प्रणाम कह देना।"

"अच्छा।"

"मेरी सब दासियों और सखियों को मेरे सब गहने, जिन्हें जो पसन्द करें, बांट देना। अब इन्हें मेरे पहनने के दिन बीत चुके।"

"भाभी !"

"उनसे कहना मेरे मोर और मृगों को ठीक समय दाना-पानी देते रहें।"

"भाभी !"

"आर्यपुत्र से कहना, मेरे उस हिरन के बच्चे को सदा प्यार करते रहें। हाय, उसे तो बिना मेरी गोद के कहीं एक पल चैन ही नहीं पड़ता था।

"भाभी !"

"लक्ष्मण ! सब बहुओं को आसीस देना, वे सदा सुहागिन रहें।"

"भाभी !"

"अब जाओ तुम लक्ष्मण !"

"भाभी !"

लक्ष्मण दुःखी मन वहां से चल दिए।

सीता उन्हें जाते देखती रही। लक्ष्मण के पैर लड़खड़ा रहे थे; पर वे दृढ़ता से चले जा रहे थे। उनके ओझल होने पर सीता ने निःश्वास छोड़कर कहा, "गए, तेज़ और विनय के अवतार, बड़े भाई की आज्ञा को ईश्वर की आज्ञा मानने वाले यती लक्ष्मण, जिन्होंने अपनी इच्छा से चौदह वर्ष वन में नींद और भूख को जीतकर हमारी सेवा की, जिन्होंने कभी आंख उठाकर मेरी ओर नहीं देखा। धन्य लक्ष्मण ! धन्य देवर ! तुम-सा देवर, तुम-सा भाई जगत में न हुआ, न होगा। जाओ, ईश्वर तुम्हारा भला करे। लो, वह गंगा-पार उतर गए, वह रथ पर बैठ गए। सपने की तरह अयोध्या के सब सुख खो गए। अब आर्यपुत्र के मीठे-प्यारे वचन कब सुनने को मिलेंगे ? कभी नहीं, कभी नहीं, हाय रे, सीता के भाग्य ! आह, यह कैसी पीर उठी। अरे, इस अभागिनी को कोई संभालो। अरे, मैं अयोध्या के महाप्रतापी महाराज की महारानी हूं; पर इस समय कोई दास-दासी, सखी-सहेली तक पास नहीं। भगवती गंगा ! क्या तुम्हारी गोद में जाऊं ? मन में प्यारे पुत्र का मुखड़ा देखने की कितनी लालसा थी। परन्तु सीता के भाग्य में पुत्रवती होना कहां ! माता कौशल्या ! बहन उर्मिला ! आर्यपुत्र ! ओह, अब नहीं सहा जाता। सबने अभागिनी सीता को भुला दिया।"

दुःख और क्षोभ से सीता मूर्च्छित होकर वहीं भूमि पर गिर पड़ीं। इसी समय दो ऋषिकुमार वहां आए। उन्होंने कहा, "अरे, यह कौन स्त्री यहां मूर्च्छित पड़ी है अथवा मर गई है ?"

वे झककर उसे देखने लगे। परीक्षण करने पर एक ने कहा, "अभी जीवित है।"

दूसरे ने भी नासारन्ध्र पर उंगली रखकर कहा, "सांस तो चलती है।"

"आश्रम की तो नहीं है। कोई नगर की स्त्री ज्ञात होती है।"

"किसी बड़े घर की राजलक्ष्मी प्रतीत होती है। गहने नहीं हैं; पर कैसा रूप-तेज है।"

"मूर्च्छित है।"

"अब क्या किया जाय ? किसे पुकारें ? कौन सहायता करे ? तुम जाकर गुरु जी को सूचना दो कि एक स्त्री गंगा के किनारे मूर्च्छित पड़ी है। लो, गुरु जी स्नान करने इधर ही आ रहे हैं।"

गुरु वाल्मीकि के समीप आने पर दोनों ने उन्हें अभिवादन किया, "गुरु जी प्रणाम !"

"चिरंजीव रहो पुत्रो ! यहां तुम क्या कर रहे हो ?"

"आर्य ! यह स्त्री यहां मूर्च्छित पड़ी है।"

वाल्मीकि ने मूर्च्छित सीता को देखा और पहचानकर आश्चर्य से बोले, "अरे, यह तो रघुकुल की राजरानी सीता हैं।"

"क्या महारानी सीता हैं ?"

"पुत्रो ! यत्न करो। कमण्डलु से जल के छींटे दो। सचेत करो इन्हें।"

छींटे देने से सीता की संज्ञा लौट आई। उसके मुंह से निकला, "आह, वह स्वप्न भी टूट गया।

ऋषिकुमारों को देखकर वह उठ बैठीं और पूछा, "आप कौन हैं ऋषि-कुमार ?" फिर ऋषि को भी देखकर बोलीं, "और आप ?"

एक ऋषिकुमार ने उत्तर दिया, "भगवती यह हमारे गुरु महर्षि वाल्मीकि हैं।"

सीता सावधान होकर उठ खड़ी हुई, "ऋषिवर, प्रणाम ! अभागिनी सीता को कहीं आसरा मिलेगा ? उसके पापी प्राण तो उसके शरीर से बहुत ही मोह रखते हैं।"

वाल्मीकि ने स्नेह से कहा, "पुत्री ! संसार गोरखधंधा है और जीवन भी। तुम धैर्य धारण करके भाग्य के विधान को देखो। पुत्रो ! देवी को आश्रम में ले जाकर भगवती आत्रेयी को सौंप दो। उनसे कह देना कि यह रघुकुल राजरानी सीता हैं। इनको कोई दुःख न हो।"

"जो आज्ञा महाराज ! चलिए महारानी !"

बीस

अयोध्या लौटकर लक्ष्मण महाराज राम को संदेश देने उनके पास गए और उन्हें प्रणाम करके खड़े हो गए। राम ने उन्हें देखकर पूछा, "आ गए भैया लक्ष्मण !"

"हां, महाराज !"

"सीता कहां छोड़ी भैया !"

"महात्मा वाल्मीकि के आश्रम के पास वन में।"

"वह आश्रम में पहुंच गई होगी भैया !"

"पहुंच गई होंगी महाराज !"

"लक्ष्मण ! क्या क्रुद्ध हो रहे हो भैया !"

"महाराज ! सेवक स्वामी पर कैसे क्रुद्ध हो सकता है ?"

"भैया लक्ष्मण !"

"अब महाराज की आज्ञा हो तो मैं राजपरिवार की सब बहुओं को सरयू में डूबो आऊं। आज्ञा दीजिए महाराज !"

"भैया ! शान्त हो।"

"महाराज ! यदि मुझे ज्ञात होता कि मुझे ऐसा निष्ठुर काम करना पड़ेगा, तो मैं पहले ही प्राण त्याग देता।"

"भाई ! राजधर्म बड़ा कठोर है।"

"यह दास उसे नहीं समझता महाराज ! भगवती सीता को मैं गंगा के उस पार वन में धरती में मूर्च्छिता-असहाय पड़ी छोड़ आया हूं।"

"मूर्च्छिता !"

"वह एकटक मेरा लौटना देखती रहीं। जब मैं इस पार आकर रथ पर चढ़कर चलने लगा, तो वह कटे पेड़ की भांति गिर पड़ीं।"

"हाय, देवी सीता !"

"मैं कुछ भी न कर सका महाराज ! अब मुझे मरवा डालिए। हाय रे, राजधर्म !"

"इस राजधर्म पर धिक्कार है ! भाई लक्ष्मण ! धीरज धरो। हाय, गुरु वसिष्ठ ! भगवती अरुंधती और सब माताएं यह सब सुनेंगी, तो क्या कहेंगी ? उन्हें कैसे समझाया जाएगा ?"

"वे सब सुन चुकी हैं महाराज !"

"सुन चुकी हैं, तो उन्होंने इस निर्दयी राम पर क्रोध नहीं किया ? शाप नहीं दिया ?"

"महाराज वे सब अब अयोध्या में लौटकर नहीं आएंगी।"

"अयोध्या में नहीं आएंगी ?"

"हां, महाराज !"

"क्यों भाई ?"

"भगवती अरुंधती ने कहा कि सीता के बिना हम अयोध्या में नहीं रहेंगे।"

"भगवती अरुंधती ने ?"

"जी हां और सब माताओं ने भी उन्हीं का साथ दिया।"

"सब माताओं ने भी ?"

"गुरु वसिष्ठ ने भी यही ठीक समझा।"

"तो उन्होंने भी दास को त्याग दिया ? तो अब केवल तुम ही इस पापी राजा की परछाईं की भांति यहां बचे हो ?"

"आर्य भरत भगवती मांडवी को साथ लेकर कहीं दूर चले गए हैं। उनके साथ सहस्रों पुरवासियों और राजकर्मचारियों ने भी अयोध्या छोड़ दी है। राजमहल में केवल बहुएं और उनकी कुछ चेरियां रह गई हैं। आज्ञा हो, तो उन्हें भी सरयू में डुबो दिया जाए।"

"हाय, भाई ! सबने मुझे त्याग दिया। अब तुम भी ऐसी कठोर बात कहते हो ?" यह कहकर राम बिलखकर रो उठे।

लक्ष्मण ने अधीरता से कहा, "अरे, महाराज ! यह आप बालक की भांति रोने लगे।"

"हाय, सीता ! तुमने मेरे लिए राजभोग तजकर वन में दुःख सहा। फूलों पर डरकर पैर रखने वाली तुम भाग्यहीन मेरे साथ नंगे पैर वन-वन फिरीं। राक्षस रावण ने तुम्हें हर लिया, तो भी तुमने इस निर्दय राम को न भुलाया। आज बिना अपराध मैंने तुम्हें त्याग दिया। अब मैं कैसे तुम्हारे बिना रहूंगा ? अरे, तुम तो कभी एक कड़वी बात भी नहीं बोली थीं। याद करने पर भी मुझे तुम्हारा कोई अपराध याद नहीं आता। अरी, जनकदुलारी ! अरी, अयोध्या की आंखों की पुतली ! उस निर्जन वन में मेरे रहते तुम असहाय गर्भ का बोझ लिए पड़ी हो ! मुझपर धिक्कार ! धिक्कार !!"

राम मूर्च्छित हो गए। लक्ष्मण ने उन्हें संभाला और सेवकों को आवाज दी, "अरे, दौड़ो ! महाराज मूर्च्छित हो गए। हाय, दास-दासी भी सब महाराज की सेवा से जी चुराने लगे। सब भगवती सीता के लिए सिर धुन रहे हैं। उठिए, महाराज ! हाय, मैं अकेला क्या करूं ? अरे, कोई आओ। कोई नहीं आता। महाराज को सबने त्याग दिया। महाराज ! सावधान होइए। हाय रे, राजधर्म !"

इक्कीस

वाल्मीकि आश्रम में सीता को यथासमय प्रसव हुआ। लव और कुश दो पुत्रों ने जन्म लिया, जिन्हें पाकर सीता का दुःख कुछ कम हुआ। भाग्य प्रबल मानकर वह भी आश्रमवासियों की भांति जीवन व्यतीत करने लगी, परन्तु राम की स्मृति तो उसकी आत्मा में बसी हुई थी, इसलिए एकान्त होने पर वह राघव की याद करके उदास हो जाती थीं। एक दिन सीता अपनी कुटी में अकेली बैठी हुई दूरी से वटुकों की वेदपाठ-ध्वनि सुन रही थी। आश्रम की संगिनी वासन्तीदेवी ने आकर कहा, "क्या हो रहा है ?"

सीता ने उत्तर दिया, "अहा, मेघ-निर्घोष के समान यह वेदध्वनि कैसी

मधुर लग रही है ! सुनने से कान पवित्र होते हैं। इस अमृत ध्वनि के सुनते ही मन के सब पाप-ताप दूर हो जाते हैं।"

"देवी ! यह वनश्री शान्त-अभिराम और पुण्यमय है। राजभोग इसके सम्मुख नगण्य है।"

"सच है बहन ! मुझे बारम्बार वनस्थली की वे अवर्णनीय शोभाशाली दिन याद आते हैं, जब मैं आर्यपुत्र के साथ वहां रहती थी।"

"अयोध्या के राजमहालय के ऐश्वर्य-भोग याद नहीं आते देवी !"

"न, बहन ! उन भोगों ने हमें ही भोगा, हमने उन्हें नहीं भोगा।"

"भोग तो ऐसे ही हैं। इसी से मनस्वी त्याग ही को श्रेष्ठ कहते हैं।'

"अथवा तप को। जहां वासना का दमन किया जाता है, इच्छाओं का संयम किया जाता है।"

"इसीसे त्याग और तप के लिए वन ही उपयुक्त है। जहां निसर्ग का शुद्ध रूप जीवन को त्याग और तप की प्रेरणा देते हैं।"

"अहा, स्वप्न-सुख के समान हमारे वे त्याग और तप के लम्बे दिन पंचवटी में बीत गए। जहां मृगी गर्व से मस्तक उठाकर मृग से खेलती थी, मृग के सींग से वह अपनी आंख खुजाती थी। गोदावरी के कूल पर, जहां महावटों की डालियों की जड़ें भगवती वसुन्धरा को चूमती थीं। जिसकी सघन छाया में हमारी पर्णकुटी मनोरम प्रस्रवण पर्वत-शृंखला के सम्मुख कैसी मनोरम लगती थी !"

"भगवती सीते ! यहां की वनश्री भी अलौकिक है। वह सामने बहती गंगा का कलकल स्वर, स्वच्छ चांदनी में दूर तक फैली हुई रजत रेती कितनी शान्त, कितनी महान और दिव्यदर्शना है !"

"परन्तु यहां आर्यपुत्र का सुखद सहवास कहां ? उनके नवमेघ के समान मुख के दर्शन कहां ? हीरक-मणि-सी शुभदृष्टि कहां ? कुसुमजाल को लांछित करने वाली अंकशय्या कहां ? अरी, सखी ! इन नेत्रों को उस प्रियदर्शन मुख के बिना यह अलौकिक वनश्री सूनी ही-सी लग रही है।"

"देवी यह तुम्हारे प्यार का प्रभाव है।"

"अहा, देखो ! इस क्षुद्र हृदय में क्षोभ का अनन्त सागर लहरा रहा है ; परन्तु विदेह की कन्या और रघुकुल वधू, इस हतभागा सीता के संताप को कैसे बहा ले जाए, जिसने विधि-विडम्बना से अपनी सब अभिलाषाओं को सूखी तपस्या से जकड़कर बांध रखा है ! तनिक भी असावधान होने से वह बांध टूट जाता है। सोया हुआ प्रेम जाग उठता है और रुंधे हुए आंसुओं की वेगवती धारा उच्छ्वास के साथ फूट निकलती है।"

"देवी ! हम तपस्विनी हैं। भला, इन प्रेम-आसक्ति की बातों से

हमारा क्या प्रयोजन है ?"

"सान्ध्य वेला आ रही है, मेघाम्बर की लाल-सिन्दूर-रेखा भाल पर दिए हुए। वनश्री धीरे-धीरे स्तब्ध होती जा रही है। यह पूर्वाकाश में चन्द्रोदय हो रहा है। आर्यपुत्र ! तुम कहां हो ? कहां हो, ओ निष्ठुर ! ओ निर्मम !"

"देवी सीता ! धैर्य धारण करो। देखो वे चिरंजीव लव-कुश आ रहे हैं, सान्ध्य क्रीड़ा करके। ये तुम्हारी आत्मा के अंश हैं। इन्हीं में अपना मन रमाओ। इन्हें अपना प्यार दो।"

दोनों बालक लव-कुश आकर सीता से लिपट गए। सीता ने उन्हें अपनी छाती से लगा लिया। उसकी आंखों में आंसू छलक आए। उसने कहा, "मेरे लाल ! मेरे नेत्रों की ज्योति ! मेरे जीवन-धन ! अब तो तुम्हीं इस दुखिया माता के सहारे हो।"

बाईस

ऋष्यश्रृंग के आश्रम में आश्रमवासिनी आत्रेयी और मुनि विभाण्डक बैठे बातें कर रहे थे। विभाण्डक बोले, "आर्ये आत्रेयी ! महा तपस्वी ऋष्यश्रृंग का बारह वर्ष का सत्र तो अब समाप्त हो गया, महात्मा ऋष्यश्रृंग ने पूजा करके सब गुरुजनों को विदा कर दिया; किन्तु अयोध्या का राजपरिवार और रघुवंशियों की रखवाली करने वाले महर्षि वसिष्ठ तो अभी यहीं हैं। वे सब कब अयोध्या जाएंगे ?"

"वे सब अब अयोध्या नहीं जाएंगे। भगवती अरुंधती ने कहा है कि सीता से रहित अयोध्या में मैं नहीं जाऊंगी। उनके आग्रह को देख कौशल्या आदि राजमाताओं ने भी यही ठान लिया है। उनके इस हठ के कारण महर्षि वसिष्ठ भी निरुपाय हो रहे।"

"अच्छा, तो उस निर्दयी राजा को सबने त्याग दिया ? फिर भला अब राज का पुरोहित कौन है ?"

"वामदेव ऋषि राज के सब वेदोक्त संस्कार कराते हैं।"

"भला राजा ने निष्पाप महिषी सीता का गर्भावस्था में त्याग किया, तो फिर दूसरा विवाह भी किया ?"

"नहीं, भाई ! एक पत्नीव्रती रामचन्द्र संयम से रहते हैं।"

"अहा, तब तो राजा में अभी विवेक है, फिर यही बात थी, तो उसने निर्दोष पत्नी को क्यों त्यागा ?"

"अपवाद के भय से।"

"तो उस धर्मात्मा राजा ने केवल अपवाद के भय से गर्भभार से व्याकुल वैदेही को त्यागते हुए मन में ग्लानि नहीं की ?"

"अरे, हम तपस्वी राजकाज की जटिलता क्या जानें। कहा है न, तप से राजा होता है और अधर्म से राजा नरक में जाता है। सो ठीक ही है। कर्त्तव्यवश राजा को घोर कर्म भी करने पड़ते हैं।"

"अकारण पत्नी का निष्कासन जैसा निष्ठुर काम भी करना पड़ता है ?"

"राजा ने बहुत अनुनय-विनय कर राजपरिवार को राजधानी में बुलाया था; परन्तु भगवती अरुंधती का क्रोध शान्त न हुआ। अब महर्षि वसिष्ठ ने कहा है कि अपने गुरुकुल ही में राजमाताओं सहित चलकर रहेंगे।"

"तो रघुकुल की रक्षा कैसे होगी? सुना है, महात्मा भरत भी अयोध्या में नहीं हैं।"

"वे मामा के यहां देवी माण्डवी सहित रहने लगे हैं। कोसल के राज्य से उन्हें अब क्या लेना-देना है ?"

"अहो, यह तो अद्भुत व्यापार है। जिस सीता के लिए राजा ने महा पराक्रम कर महाबली रावण का सवंश नाश किया, उसी सीता को उसने इस प्रकार त्याग दिया। ऐसा तो कोई पति नहीं कर सकता।"

"भाई ! राजकाज के सौ झंझट हैं।"

"न जाने अब भगवती सीता कहां हैं, कैसी हैं ?"

"सुना है, महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में हैं।"

"यह भी तो सुनते हैं कि महर्षि वाल्मीकि को शब्दब्रह्म का प्रकाश स्पष्ट हुआ है और वे दिव्यदृष्टि और आर्षज्ञान से रागात्मक काव्य रच रहे हैं।"

"ऐसा ही सुनते हैं। यह भी सुना है, दो ऋषिकुमार दिव्यवाणी से वह काव्य-गायन करते हैं।"

"यह तो वेद से भिन्न पहली ही रचना है।"

"ऐसा ही है। लो, धूप चढ़ गई, भगवती अरुंधती का आज उपवास है। चलूं देखूं, भगवती क्या आज्ञा देती हैं ?"

तेईस

राम ने ठण्डी सांस लेकर लक्ष्मण से पूछा, "तो अब भरत अयोध्या में नहीं आएंगे ?"

लक्ष्मण ने उत्तर दिया, "महाराज की आज्ञा से मैंने चर भेजा था; परन्तु उन्होंने कहा, निष्पाप भगवती सीता के साथ ऐसा निर्मम दुष्कृत्य करने वाले राजा से मेरा क्या सम्बन्ध है ?"

"ठीक ही तो कहा, जिन भरत ने मुझ भाग्यहीन के लिए अयोध्या के साम्राज्य को ठुकरा दिया, चौदह वर्ष मेरी पादुका लेकर, जिसने अपनी असीम निष्ठा का परिचय दिया, उसी प्राणाधिक भरत ने आज मुझे त्याग दिया, सो दोष मेरा ही है।"

"शत्रुघ्न ने लवण को परास्त कर मधुपुरी अपने अधीन कर ली है। वे भी वहीं बस गए हैं।"

"समझ गया। इस अधम राजा का मुंह वे नहीं देखना चाहते। यह भी ठीक है।"

"महात्मा ऋष्यश्रृंग का सत्र सम्पूर्ण हो गया। अब महर्षि वसिष्ठ और भगवती अरुंधती सब माताओं तथा राजपरिवार सहित गुरुकुल वास के लिए चले गए हैं।"

"तो वे सब गुरुपद अब राजधानी में नहीं आएंगे ?"

"ऐसा ही है महाराज !"

"वत्स लक्ष्मण, अब केवल तुम्हीं देवता की भांति अपने दम से इस अधम राम की रक्षा कर रहे हो। भाई ! तुम्हारी अमर-अक्षय कीर्ति जगत में जब तक सूर्य-चन्द्र हैं, तब तक गायी जाएगी। तुम्हारा प्रेम पवित्र है, चरित्र महान है, त्याग अनुपम है, तुम्हारे गुण ऐसे हैं कि सारे संसार के मनुष्य तुम्हारी पूजा करेंगे।"

"महाराज ! इन बातों का अब क्या प्रकरण है ?"

"जिस दिन युद्ध में तुम्हारी छाती में शक्ति लगी थी, तुम्हारे घाव से रक्त की धार बह रही थी, तब मेरे नेत्रों में अंधकार छा गया था। उस दिन मैंने समझा था कि हम-तुम दोनों संसार-सागर में एक नाव पर सवार हैं। हमारे शरीर दो हैं, प्राण एक हैं। हम कभी अलग नहीं हो सकते। सो आज तुम ही मेरे पास रह गए। सबने मुझे त्याग दिया।"

"महाराज ! अब दुःख करने से क्या लाभ है ? देखिए, वह ऋषिवर वामदेव आ रहे हैं।"

इसी समय ऋषि वामदेव वहां आ पहुंचे। राम ने उठकर उनका अभिवादन किया, "अभिवादन करता हूं भगवन् !"

"महाराज की जय हो ! सब अकल्याण दूर हों।"

"कहिए, ऋषिवर ! आज किस आज्ञा से इस दास को धन्य करने इस समय पधारने का कष्ट किया ?"

"राजन् ! तुम्हारा यह दुःख तो देखा नहीं जाता। अब इस जर्जर शरीर पर इतने बड़े साम्राज्य का भार भी है और हृदय का भार भी।"

"सो यह तो भगवन् ! जीते-जी भार ढोना ही होगा।"

"राजन् ! राजधर्म का पालन करके राजा प्रथम अपना कल्याण करता है, फिर पृथ्वी का।"

"सो मैं अपना कल्याण तो कर चुका ऋषिवर !"

"महाराज ! त्याग सबसे श्रेष्ठ तप है, उसका पुण्य बहुत है। उसे कातर बनकर क्षीण मत कीजिए।"

"गुरुदेव की अब इस दास को क्या आज्ञा है ?"

"महाराज ! तप से तेज बढ़ता है। सो आप तेज धारण कीजिए।"

"किस प्रकार ऋषिवर !"

"आप महर्षि वसिष्ठ की सेवा में जाइए।"

"कौन-सा मुंह लेकर जाऊं ?"

"इतनी आत्मप्रतारणा क्यों ?"

"मेरा दुष्कृत्य लोक विख्यात है ऋषिवर !"

"महाराज ! दुष्कर्म करके आपने क्या कोई स्वार्थ-साधना की है ?"

"नहीं, ऋषिवर !"

"तो आप ऐसा मानते हैं कि आपने किसी पर अत्याचार किया है ?"

"केवल अपने ऊपर।"

"तो महाराज ! आपने आत्मयज्ञ का पुण्यलाभ किया है। आप ऋषिवर वसिष्ठ की सेवा में जाइए।"

"जाकर क्या कहूं ?"

"कहिए कि मैं अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान करूंगा।"

"अश्वमेध ?"

"क्यों नहीं, क्या आप सार्वभौम सम्राट नहीं हैं ? क्या पृथ्वी पर आप-सा धीर, वीर, धर्मप्राण, कर्त्तव्यनिष्ठ और भी कोई राजा हुआ है ?"

"ऋषिवर ! प्रेम के कारण ऐसा कह रहे हैं।"

"जिस सत्य को मैं देख रहा हूं, वह संसार देखे, मैं यही चाहता हूं।"

"वह कैसे ?"

"आप अश्वमेध कीजिए।"

"मैं भग्नहृदय राम क्या इसका अधिकारी हूं ?"

"अवश्य हैं।"

"मैं विपत्नीक हूं। राजमहिषी के बिना अश्वमेध अनुष्ठान कैसे हो

सकेगा ?"

"भली भांति हो सकेगा।"

"किस विधि से ?"

"वह विधि भगवान वसिष्ठ आपको बताएंगे। आप वसिष्ठ की सेवा में जाइए।"

"जैसी ऋषिवर की आज्ञा। भाई लक्ष्मण ! इसकी व्यवस्था तुम करो।"

कुछ समय बाद राम ने गुरु वसिष्ठ से उनके आश्रम में जाकर भेंट की।

वसिष्ठ ने पूछा, "रामभद्र! तुम किसलिए अब मेरे पास आए हो?"

"ऋषिवर ! यह दास अब और कहां जाए ? आप कहिए, मैं क्या करूं ?"

"कठिनाई क्या है रामभद्र !"

"गुरुदेव ! छोटे-छोटे राजाओं की मनमानी से प्रजा में शान्ति नहीं रहती है।"

"तब ?"

"एकछत्र राज्य की बड़ी आवश्यकता है।"

"तुम प्रतापी राजा हो राम ! एकछत्र राज्य की स्थापना करो।"

"ऋषिवर ! मैं अकारण किसी पर चढ़ाई नहीं करूंगा।"

"तब अश्वमेध यज्ञ करो।"

"अश्वमेध ?"

"हां, रामभद्र !"

"आर्य ! मैं भाग्यहीन, पत्नी और पुत्रहीन राजा हूं। यज्ञ का अधिकारी नहीं।"

"रामभद्र ! तुम दूसरा विवाह करो। पत्नी और पुत्र तुम्हें प्राप्त होंगे।"

"हाय, गुरुवर ! आप यह क्या कह रहे हैं ?" यह कहकर राम रोने लगे। उन्हें रोते देख वसिष्ठ बोले, "रोते हो रामभद्र ?"

"भगवन ! आपने मेरा घाव छू लिया।"

"रामभद्र ! तुम तो बालक की भांति अधीर हो गए वत्स !"

"गुरुदेव ! सीता को त्यागे आज अठारह वर्ष व्यतीत होते हैं।"

"होते तो हैं।"

"आज अठारह वर्षों में मैंने सीता की सुध भी नहीं ली।"

"हुआ तो ऐसा ही है।"

"मैंने ऐसी निठुराई करके अपने ही ऊपर अत्याचार किया है।"

"अपने ही ऊपर क्यों भद्र ?"

"हां, ऋषिवर ! अब आप ऐसी आज्ञा मत दीजिए कि मैं सीता पर अत्याचार करूं।"

"अब सीता पर और क्या अत्याचार होगा रामभद्र !"

"दूसरा विवाह करना सीता पर अत्याचार है।"

"धन्य रामभद्र ! धन्य हो तुम ! धन्य तुम्हारी निष्ठा ! धन्य तुम्हारा प्रेम !"

"तो भगवन् ! अश्वमेध नहीं हो सकेगा ?"

"हो सकेगा राम। सीता की सोने की मूर्ति तुम्हारी अर्धांगिनी होगी।"

"ऋषिवर··· !"

"रामभद्र ! शान्त हो !"

"सीता की मूर्ति ?"

"हां, राम !"

"मेरे अहोभाग्य भगवन् ! मैं उस मूर्ति में पवित्रात्मा सीता को देख पाऊंगा तो ?"

"अवश्य, राम ! तुम यज्ञ की तैयारी करो।"

"जो आज्ञा ऋषिवर !"

"और स्वयं महात्मा वाल्मीकि के आश्रम में जाकर उन्हें निमन्त्रण दे आओ।"

"जो आज्ञा; परन्तु ऋषिवर स्वयं और माताएं भी चलेंगी तो अच्छा।"

"ऐसा ही हो रामभद्र ! मैं उनसे कह कह दूंगा।"

"तो दास चला। माताओं को मुंह दिखाने की ढिठाई मुझसे न होगी।"

"समय पर सब होगा राम ! जाओ, अपना कार्य करो। कुण्ठित न हो।"

"अभिवादन करता हूं गुरुदेव !"

"तुम्हारा कल्याण हो रामभद्र !"

चौबीस

एक दिन भगवान वाल्मीकि के आश्रम में लव और कुश सीता से जिद्द करने लगे। लव ने कहा, "माता ! आज हम तुमसे वह भेद पूछकर

रहेंगे।"

"कौन-सा भेद, पुत्र।"

"और नहीं बताओगी तो रूठ जाएंगे, बोलेंगे नहीं।"

"क्यों मेरे लाल ! दुखिया मां से रूठोगे ?"

"तो बता दो आज।"

"सब ऋषिकुमार हमें चिढ़ाते हैं।"

"हंसी करते हैं। कहते हैं, बताओ, तुम्हारे पिता कौन हैं ?"

"प्यारे पुत्रो ! तुम्हारे पिता महात्मा वाल्मीकि ही तो हैं ?"

"नहीं, मां ! वे हमारे गुरुपद हैं।"

"पुत्रो ! गुरु ही पिता होता है।"

"वाह ! गुरु तो सभी के गुरु हैं; पर सबके पिता भी तो और हैं। यह हम जानते हैं।"

"क्यों बेटा ! अभागिनी मां पर विश्वास नहीं करते ?" यह कहते-कहते सीता की आंखें भर आईं।

"रोने क्यों लगीं माता ! तुमसे जब पिता जी का नाम पूछते हैं, तभी तुम रोने लगती हो।"

"मेरे नयन-दुलारो ! तुम्हीं मेरे जीवनधन और आंखों के उजाले हो। तुम जीते रहो पुत्रो !"

"तुम हमारी बड़ी अच्छी मां हो। हो न मां ?"

"अरे, पुत्रो ! मैं तुम्हारी धाय हूं, दासी।"

"ऐसा न कहो मां।"

"लाल ! तुम्हारी मां तो बड़ी भारी महारानी थी। उनका बड़ा प्रताप था। उनके बड़े-बड़े महल थे। राजधानी थी। हाथी, घोड़े, रथ थे।"

"महल, हाथी, घोड़े कैसे होते हैं मां !"

"बेटे ! बड़े होने पर तुम वे सब देखोगे।"

"हम बड़े कब होंगे मां !"

"अरे, मेरे लाल ! अब तुम बड़े हो गए हो।"

"तो हम महल, हाथी, घोड़े कब देखेंगे ?"

"बहुत शीघ्र पुत्रो !"

"और मां को भी ?"

"हां, बेटे !"

"और पिता जी को भी ?"

"उन्हें भी।"

"तो हमारे पिता जी हैं ?"

"हैं।"
"और गुरुपदं ?"
"वे तुम्हारे धर्मपिता हैं।"
"और तुम मां ?"
"मैं तुम्हारे पिता की दासी, तुम्हारी धाय।"
"तो हम यहां क्यों आ गए मां !"
"भाग्य ले आया लाल !"
"तुम्हें भी ?"
"मुझे तुम्हारे पिता ने निकाल दिया था।"
"महल से निकाल दिया था ?"
"हां, लाल !"
"क्यों मां ?"
"बेटा ! वे राजा हैं ?"
"और वे महल में रहते हैं ?"
"हां, पुत्र !"
"मैं उनसे नहीं बोलूंगा।"
"पिता जी बड़े बुरे हैं।"
"ऐसा न कहो लाल ! तुम्हारे पिता दया और धर्म के अवतार हैं।"
"और हमारी माता ?"
"हां, वह, वह भी।"
"हमारी माता तुम हो ?"
"लाल ! मैं तुम्हारी दासी हूं।"
"तुम हमारी मां हो।"
"यह दुखिया, भिखारिन तुम्हारी मां ! हाय रे भाग्य !"
"मां ! तुम फिर रोने लगीं। मुझे बड़ा होने दो, मैं तुम्हारे लिए एक महल बनवाऊंगा।"
"और मैं हाथी-घोड़े ले आऊंगा।"
इसी समय बहुत-से ऋषिकुमार कोलाहल करते हुए वहां आ पहुंचे। एक ऋषिकुमार ने लव से कहा, "कुमार ! घोड़ा एक पशु होता है न ऐसा सुना था। वह आज यहां आया है।"
"घोड़ा एक पशु है और वह युद्ध में काम आता है। कहां देखा तुमने घोड़ा ?"
"आश्रम के उस पार है। उसकी बड़ी-सी पूंछ है। उसे वह बार-बार हिला रहा है।"

"उसकी गर्दन बड़ी लम्बी है।"

"पैर में चार खुर हैं।"

"भूख लगने पर घास खाता है।"

"चलो, कुमार ! उसे पकड़ लें। बड़ा मजा आएगा।"

"चलो, फिर देखें, कैसा वह घोड़ा है।"

लव और कुश दोनों ही ऋषिकुमारों के साथ घोड़ा पकड़ने चल दिए। घोड़े को देखकर लव ने कहा, "हां, यही है घोड़ा। ठहरो, मैं इसे बांधता हूं। तुम उसे ढेला मार कर रोको।"

सब ऋषिकुमार शोर मचाकर बोले, "आहा हा, बड़ा मजा है।"

शोर सुनकर घोड़ा हिनहिनाया। कुछ सैनिक भी आ पहुंचे।

एक सैनिक ने ऋषिकुमार को देखकर कहा, "अरे, किसे अपनी जान भारी हुई है, जिसने अश्वमेध का घोड़ा रोका है ! तुमने क्या महाप्रतापी राजा राम का नाम नहीं सुना, जिन्होंने रावण का सवंश नाश कर दिया ? उनसे जो वीर लोहा ले, यह घोड़ा रोके।"

कुश ने दर्प से उत्तर दिया, "अरे, यह तो घमण्ड की बातें करता है। सैनिको ! क्या तुम्हारे महाराज-सा कोई शूर ही नहीं है ?"

दूसरा सैनिक बोल उठा, "अरे, ऋषिकुमार ! क्यों गाल बजाते हो ? कुमार चन्द्रकेतु इस घोड़े की रखवाली कर रहे हैं। वह जब तक आवें उससे पहले ही घोड़े को छोड़ दो और यहां से खिसक जाओ। इसी में भला है।"

सैनिक की यह बात सुनकर ऋषिकुमारों ने लव से कहा, "छोड़ दो कुमार। इनके चमकीले शस्त्रों से हमें डर लगता है। चलो, हम सब छलांगें मारते भाग चलें।"

लव ने हंसकर उनका विरोध करके कहा, "क्या चमकीले शस्त्रों से हम डरते हैं ? हमारे पास भी तो धनुष है।"

यह कहकर लव ने अपने धनुष पर डोरी चढ़ा ली और उसे टंकारने लगा। ऋषिकुमारों ने देखा कि लव को क्रोध आ गया है और उसने सैनिकों का भय नहीं किया, बाण छोड़ने लगा। सैनिक घायल होकर चिल्लाने लगे। कोलाहल सुनकर घोड़े के रखवाले कुमार चन्द्रकेतु ने उसी दिशा में अपना रथ दौड़ाया। चन्द्रकेतु ने सारथी से कहा, "आर्य सुमन्त ! हमारा रथ उसी वीर ऋषिकुमार के सामने ले चलिए। अरे, यह तो रघुवंशियों की भांति लड़ रहा है !"

"क्या कहने हैं। वह ऋषिकुमार महावीर है।"

"परन्तु उस अकेले पर इतनों का इकट्ठा होकर हल्ला बोलना तो ठीक नहीं।"

"पर वे सब उसका कर ही क्या सकते हैं ? वह तो सबको मारे डाल रहा है। हमारे सैनिक तो भागने लगे।"

"तो शीघ्रता कीजिए आर्य। हमारा रथ शीघ्र वहां पहुंचाइए।"

"अच्छा, कुमार ! लो, वह वीर तुम्हारी ललकार सुनकर यहीं आ गया।"

लव ने रथ के सम्मुख पहुंचकर कहा, "कुमार चन्द्रकेतु ! लो मैं ही स्वयं आ गया हूं। मैंने आपके सब सैनिकों को परास्त कर दिया है। अब आपसे युद्ध करूंगा।"

चन्द्रकेतु ने लव को देखकर कहा, "ठहरो, ऋषिकुमार ! तुम पैदल और मैं रथ पर, यह ठीक नहीं है। मैं भी नीचे आता हूं ! आर्य ! रथ रोक दीजिए। मैं पैदल लड़ूंगा।

सुमन्त ने पूछा, "किसलिए कुमार !"

"इस वीर ऋषिकुमार का आदर करने के लिए। ऋषिकुमार ! यह रघुवंशी चन्द्रकेतु आपका अभिवादन करता है।"

लव ने कहा, "कुमार ! इतना आदर दिखाने की क्या आवश्यकता है ? आप रथ पर चढ़े ही अच्छे लगते हैं।"

"तो आप भी एक रथ पर चढ़िए।'

"अरे, हम वनवासी रथ पर चढ़ना क्या जानें ?"

सुमन्त ने कहा, "धन्य ऋषिकुमार ! आपका विनय धन्य है !"

"कुमार ! सुना है महाराज राम को अभिमान नहीं है, फिर उनके सेवक क्यों अभिमान करते हैं ?"

"अश्वमेध के घोड़े को रोकना रार ठानना ही है। जो लड़ना चाहे, वही घोड़े को रोके।"

"क्षत्रिय तो पृथ्वी पर और भी हैं।"

सुमन्त ने लव को टोककर कहा, "ऋषिकुमार ! तुम छोटे मुंह बड़ी बात करते हो।"

लव हंस दिया, "तो आर्य ! परशुराम को तो महाराज ने मीठी-मीठी बातों से ही जीता था।"

चन्द्रकेतु ने क्रोधपूर्वक कहा, "अरे, बड़ों की निन्दा करता है ?"

"अरे, मुझको ही आंख दिखाता है ?"

"अब इसका निर्णय शस्त्र करेंगे।"

"उठाओ शस्त्र।"

चन्द्रकेतु और लव में युद्ध होने लगा। लव बड़े कौशल से चन्द्रकेतु के बाण काटकर प्रहार करने लगा। इसी समय राम भी पुष्पक विमान से वहां

आ पहुंचे। विमान से उतरकर राम ने कहा, "पुत्रो ! लड़ाई रोक दो।"

चन्द्रकेतु ने राम को देखकर कहा, "अरे, महाराज स्वयं ही पधारे हैं।"

लव ने भी हाथ रोककर कहा, "सच, तब चलो। पूज्य चरणों में प्रणाम करें।"

राम ने उन्हें देखकर कहा, "अरे, पुत्रो ! तुम्हारे घाव तो नहीं लगा ?"

चन्द्रकेतु ने उत्तर दिया, "नहीं, महाराज ! अब हम मित्र हो गए।"

"बहुत अच्छा किया। तुम्हारा मित्र तो वीर-धीर दीखता है वत्स !"

लव बोला, "महाराज ! वाल्मीकि-शिष्य आपका अभिवादन करता है।"

"आयुष्मान होओ ! आओ, कुमार ! मेरी गोद में बैठो। तुम्हें देखकर तो जैसे प्राण हरे गए। तुम्हारा नाम क्या है ?"

"आर्य ! दास का नाम लव है। हाय, श्रीमहाराज तो मुझसे इतना प्यार करते हैं और मैं लड़ बैठा।"

"पुत्र ! तुम्हारी वीरता तुम्हें ही सजती है। कुमार ! तुम किस भाग्यवान के पुत्र हो ?"

"महाराज ! हम भगवान वाल्मीकि के पुत्र हैं।"

"तो तुम अकेले हो ?"

"नहीं, महाराज ! बड़े भाई आर्य कुश हैं। आर्य कुश ! स्वयं महाभाग महाराजा रघुपति यहां विराजमान हैं, उन्हें अभिवादन कीजिए।"

कुश ने आगे बढ़कर कहा, "क्या यही रामायण के नायक महाराज महाभाग राम हैं ? महाराज ! यह वाल्मीकि-पुत्र कुश आपका अभिवादन करता है।"

"आयुष्मान् होओ ! अरे, मेरे दाहिने अंग फड़कने लगे ! इन बालकों को देखकर तो इन्हें छाती से लगाने को जी चाहता है। आओ, आयुष्मानो, यहां हमारी गोद में बैठो।"

"महाराज ! धूप बहुत तेज है। आइए, इस साल के पेड़ की छांह में बैठिए।"

"अच्छा, पुत्र ! चलो, अहा, इन बच्चों की मुखाकृति देवी सीता से कितनी मिलती है। हाय, मेरे पुत्र भी इतने बड़े हुए होते; पर अब इन बातों से क्या ? हाय, देवी सीता !"

"महाराज ! क्या सोच रहे हैं ? यह क्या ? महाराज तो रो रहे हैं !"

"कुछ नहीं, पुत्रो ! कुछ नहीं। यह अभागा मन तो यों ही अधीर हो

जाता है। हां, यह तो कहो, सुना है, महात्मा वाल्मीकि एक काव्य रच रहे हैं, रामायण ?"

"हां, महाराज ! उसमें श्रीमहाराज का ही तो वर्णन है।"

"कैसा वर्णन है सुनूं तो।"

"एक श्लोक तो आज ही पढ़ा है।"

"सुनाओ, पुत्रो ! कैसा श्लोक है ?"

लव-कुश ने गाकर सुनाया :

"सीता जी श्रीराम की प्रिया रहीं अत्यन्त।
सीता जी के गुणों से बढ़ा प्यार नित नित्य ॥"

राम ने उसे सुनकर अनुताप से कहा, "हाय, देवी सीते ! तुम ऐसी ही थीं।"

एक ऋषिकुमार ने दूर से पुकारकर कहा, "अरे, मित्रो ! तुम नहीं जानते, आज आश्रम में बड़े-बड़े अतिथि आए हैं। इसी से गुरुजी ने हमें छुट्टी दे दी है।"

लव ने पूछा, "कौन-कौन आए हैं ?"

कुश ने उधर देखकर कहा, "अरे, वे सब तो इधर ही आ रहे हैं।"

लव ने सबसे आगे वाले को देखकर पूछा, "पर इन सबके आगे वस्त्र लपेटे हुए ये कौन हैं ?"

राम ने उनकी अभ्यर्थना में उठते हुए बताया, "ये महात्मा वसिष्ठ हैं। इनके साथ भगवती अरुन्धती और माता कौशल्या भी हैं। हाय, मुझपर तो विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा। अब कहां पापी मुंह छिपाऊं ? अरे, पुत्रो ! इन गुरुजनों को आगे बढ़कर सत्कारपूर्वक प्रणाम करो।"

यह सुन सब कुमार आगे बढ़े, राम एक ओर को हट गए।

कौशल्या ने कहा, "अहा, देखो, आज इन ऋषिकुमारों की छुट्टी हो गई है। बेचारे मग्न होकर खेल-कूद कर रहे हैं। अरे, इनके बीच यह कौन देवता के समान बैठा था ? वही मेरे राम तो नहीं ? गुरुदेव ! आप तो राम को पहचानते हैं। लो, वे हमें देखकर खिसक गए। हाय राम !"

वसिष्ठ बोले, "रामभद्र ही हैं। महारानी ! तुमने इन दोनों बालकों को भी देखा, जो उनके कन्धे पर हाथ धरे खड़े थे ? लो, वे सब इधर आ रहे हैं।"

कौशल्या ने फिर पूछा, "ऋषिवर, ये दोनों बालक कौन हैं ? ये तो क्षत्रिय बालक दीख पड़ते हैं, पीठ पर तरकश, हाथ में धनुष, सिर पर जटा मजीठ से रंगी धोती, मूंज की करधनी, पीपल का डंडा।"

"ये क्षत्रिय कुमार ही हैं महारानी।"

कौशल्या ने आंखों में आंसू भरकर कहा, "राम जब इतने बड़े थे तो बिलकुल ऐसे ही थे। हाय राम !"

"चलो महारानी। हम सब महात्मा वाल्मीकि के पास चलकर अपने सन्देह दूर करें।"

"चलिए ऋषिवर।"

पच्चीस

सीता ने सखी वासन्ती से पूछा, "अरी, सखी ! सुना है, वे आए हैं।"

"कौन देवी !"

"वही, मेरे जीवन-धन, प्राणों के प्रिय, महाराज रघुपति।"

"सुना तो मैंने भी है। तो देवी ! तुम गंगा में स्नान करके नयी मृग-छाला पहन लो। लाओ, मैं तुम्हारे उलझे हुए बालों को गूंथ दूं, फूलों से सजा दूं।"

"क्यों सखी ! यह किसलिए ?"

"देवी ! एक बार आंख भरके मैं तुम्हें वनदेवी के रूप में देखना चाहती हूं। हाय, मुरझाई हुई बेल की तरह तुम्हारी सोने की देह ।"

"सखी ! यह देह आज मैं गंगा में विसर्जन करूंगी।"

"ऐसी बात न कहो देवी ! तुम्हारा यह पुण्य शरीर...।"

"यह पापी शरीर ।"

"नहीं-नहीं, पति और पुत्र के रहते ऐसा न कहो, पर महाराज को ऐसा नहीं करना चाहिए था।"

"प्यारी सखी ! रघुकुल-कमल की निन्दा मत करो।"

"धन्य सती ! आज भी तुम्हारे मन में उनके लिए वैसा ही प्यार है।"

"प्यार की अमृतधारा पीकर अठारह वर्ष से जी रही हूं, सखी ! पर आज मैं मरूंगी।"

"चुप रहो देवी ! ऐसी बातें न करो।"

"मैं कैसे उन्हें पापी मुंह दिखाऊंगी। मैं अनाथ हूं।"

"महाराज के रहते ?"

"हाय रे, मेरा भाग्य !"

इसी समय सीता को राम की ध्वनि सुनाई दी। राम सीता को ढूंढते हुए कह रहे थे, "सीता ! तुम कहां हो ?"

सीता ध्वनि को पहचानकर बोली, "अरे, यह तो वही पहचानी हुई बोली है ! इतने दिनों बाद आज कानों में फिर अमृतवर्षा हुई।"

"देवी ! संभल जाओ। वे इधर ही आ रहे हैं।"

"हां, वे ही हैं। कितने दुबल हो गए हैं ! मुंह पीला हो गया है। बाल पक गए हैं। सखी ! मेरा सिर घूम रहा है।"

राम की ध्वनि फिर सुनाई दी, "हाय, सीता ! प्यारी सीता !!"

सीता ने चीत्कार किया, "हाय, आर्यपुत्र !"

राम ने और भी कहा, "अरे, मेरे सुख-दुख की संगिनी जनकदुलारी सीता··· !"

यह कहते-कहते वे मूर्च्छित होकर गिर पड़े। सीता ने उन्हें दूर से मूर्च्छित होते देखा। घबराकर बोलीं, "अरी, सखी ! वे तो इस अभागिनी को पुकारते-पुकारते ही मूर्च्छित हो गए।"

"चलो, देवी ! उनका कुछ यत्न करें।"

"सखी ! मेरा हाथ पकड़कर चलो। मेरी आंखें आंसुओं से अंधी हो रही हैं और मेरे पांव लड़खड़ा रहे हैं।" दोनों मूर्च्छित राम के पास आ पहुंचीं।"

वासन्ती ने कहा, "देवी, महाराज के शरीर पर धीरे-धीरे हाथ फेरो।"

राम मूर्च्छा में बड़बड़ाने लगे, "चन्द्रमा नहीं है। दूर तारे टिमटिमा रहे हैं। सन्नाटा छा रहा है। नगरवासी सो रहे हैं; पर उनके राजा की आंखों में नींद नहीं है। कितने दिन बीत गए, सीता, कहां हो ? कहां हो ? आओ, सीते ! आओ। सोने की सीता ! तुम हंसतीं-रोतीं भी तो नहीं। क्या क्रुद्ध हो या इस अधम दास को अब भी प्यार करती हो ? कुछ पता नहीं। हंसो-हंसो, प्राणेश्वरी ! मेरी सोने की सीता ! हंसो तो तनिक। मैं समझ लूं कि तुम्हारा प्यार मेरे लिए अभी है।"

सीता ने वासन्ती से कहा, "अरी, सखी ! आर्यपुत्र का यह विलाप तो सहा नहीं जाता। कैसे इन्हें चैतन्य करूं ?"

"देवी ! धीरे-धीरे महाराज के शरीर पर हाथ फेरो।"

राम उस स्पर्श का अनुभव कर बुदबुदाए, "अहा ! यह किसने छुआ? प्राण हरे हो गए ! सूखते धान पर पानी पड़ा। बोलो, सीते ! बोलो एक बार वह मीठा स्वर, जिसे सुनने को तरस रहा हूं। अरी, प्रियम्वदा सीते।"

सीता ने रोते-रोते कहा, "इतने दिन बाद सुध ली आर्यपुत्र ! अभागिनी दासी तो चरणों ही में है।"

"कौन बोला यह ? कितना मधुर ! कितना प्रिय !"

सीता वासन्ती से रोती हुई कहने लगी, "अरी, सखी ! आर्यपुत्र की मूर्च्छा टूट रही है। अब चलो यहां से।"

राम बुदबुदाए, "वही-वही-वही-वही स्वर है। सीता प्रिये ! संध्या हो रही है। पृथ्वी सुनहरी रंग गई है। उस बरगद की डालियों की जड़ें धरती को चूम रही हैं। कौन पक्षी गा रहा है ? पम्पा सरोवर ...।"

सीता ने कहा, "सखी ! आर्यपुत्र पुरानी बातों के सपने देख रहे हैं।"

"यही तो पंचवटी है। यहीं तो हमारी कुटिया थी। उसमें सीता रहती थी। सीते ! ओ, प्रियम्वदा सीते !"

"हाय, सुप्राणेश्वर ! वह अधम दासी जीती-जागती यहीं है।"

"कहां ? कौन तुम ? मैं कहां ?"

वासन्ती ने राम के सिर पर हाथ रखकर कहा, "महाराज ! सावधान होइए। यह देवी सीता हैं।"

"देवी सीता !"

"हां, महाराज !"

राम ने आंख खोलकर सीता को देखा। सीता को उस वेश में देखकर राम का मन हाहाकार कर उठा। वे बोले, "देवी ! तुम्हारा यह मलिन वेश, उलझे हुए बाल। तो तुम देवी सीता हो ?"

"हां, यह अभागिनी आपकी दासी सीता है।"

"जनक की राजदुलारी ?"

"हां, आर्यपुत्र !"

"हाय, प्रिये ! मेरे रहते तुम्हारी यह दशा हो गई। अरे, देवी का यह रूप देखने से पूर्व ही मेरी आंखें फूट जाएं।"

"महाराज ! इस जन्म में दर्शन हो गए। जीवन सफल हो गया। अरे, वे भगवती अरुन्धती और माता कौशल्या इधर ही आ रही हैं।"

"उन्हें यह अधम राम कैसे मुंह दिखलाएगा।"

इसी समय वहां कौशल्या और अरुन्धती भी आ पहुंचीं।

कौशल्या ने अरुन्धती से पूछा, "भगवती ! वह रामचन्द्र ही हैं न ? अब तो पहचाने भी नहीं जाते। अरे, पुत्र राम !"

अरुन्धती ने कहा, "महारानी ! वहां सौभाग्यवती सीता भी हैं।"

"तो सचमुच पुत्र और बहू में मेल हो ही गया।"

"हां, महारानी ! आओ, रामचन्द्र का संकोच दूर करें।" वे और आगे बढ़ीं। राम ने माता को देखकर कहा, "माता ! यह कुपुत्र राम आपके चरणों में अभिवादन करता है।"

"रामचन्द्र ! मेरे पुत्र ! आओ। मेरी छाती को ठंडी करो। अरी, बेटी सीता ! मेरी सुलक्षणा बहू ! अरी तपस्विनी ! तू धन्य है !"

"पूज्ये ! आपकी दासी सीता अभिवादन करती है।"

अरुन्धती और कौशल्या ने आशीर्वाद देते हुए कहा, "सौभाग्यवती रहो। रामचन्द्र ! तो तुमने सीता को ग्रहण किया न पुत्र !"

एक ऋषिकुमार ने आकर सूचना दी कि विदेहराज जनक आप लोगों से मिलने आ रहे हैं।

यह सुन कौशल्या ने भय से कहा, "हाय, मैं कैसे उन राजर्षि को मुंह दिखलाऊंगी ?"

राम बोले, "माता अपराधी तो मैं हूं। मैंने ही तो जनकदुलारी को अनाथ बनाया।"

राजा जनक आ पहुंचे। उन्होंने प्रणाम करते हुए कहा, "भगवती अरुन्धती ! सीरध्वज जनक आपको प्रणाम करता है। अरे, क्या प्रजा पालने वाले राजा की माता भी यहीं हैं और मेरी बेटी सीता भी ? हाय, मेरी प्यारी बच्ची !"

राजा जनक की बातों में उलाहना समझकर कौशल्या मूर्च्छित होकर गिर पड़ीं। अरुन्धती ने कहा, "महाराज ! महारानी कौशल्या ने तो इसी क्रोध से अठारह बरस तक रामचन्द्र का मुंह नहीं देखा। रामचन्द्र ने भी अपवाद के भय से यह काम किया था।"

जनक ने पश्चाताप के स्वर में कहा, "मैंने बहुत कठोर बात कह दी, बुरा किया। यह महात्मा दशरथ की पत्नी बड़ी सती है। अरे, मित्र दशरथ, तुम्हीं स्वर्ग में अच्छे रहे। हम जीवित रहकर यहां दुःख भोग रहे हैं।"

परन्तु कौशल्या की चेतना शीघ्र ही लौट आई। उन्होंने कहा, "बेटी जानकी ! जब तू नई बहू बनकर महल में आई थी, उस समय का तेरा हीरे मोतियों से सजा हुआ हंसता मुख मुझे याद है। स्वर्गवासी महाराज तो तुझे अपनी कन्या ही कहा करते थे। आज हमारे रहते तेरी यह दशा हो गई।"

अरुन्धती ने धीरज बंधाते हुए कहा, "महारानी ! धीरज धरो। अंत में सब भला होगा।"

इसी समय एक ऋषिकुमार ने आकर सूचना दी, "गुरुदेव वाल्मीकि सबको स्मरण कर रहे हैं। वहीं महामुनि वसिष्ठ भी बैठे हैं।"

अरुन्धती ने कहा, "चलो, रामचन्द्र ! महारानी और विदेहराज चलो। बेटी सीता ! सब कोई महात्मा वाल्मीकि के पास चलें।"

सब चलकर वाल्मीकि के पास आए। राम बोले, "ऋषिवर ! आपके चरणों में यह अधम राम अभिवादन करता है।"

"राजा राम ! तुम्हारी जय हो। कहो, राज्य में सब कुशल तो है ?"

"आपकी दया से सब कुशल है।"

"सुना है राजन् तुम अश्वमेध यज्ञ कर रहे हो ?"

"हां, भगवन् ! मैं आपको निमन्त्रण देने आया हूं।"

"बहुत अच्छी बात है। हां, महाराज ! इस यज्ञ में राजा की रानी कौन है ?"

"सीता की सोने की मूर्ति।"

"क्या कहा ?"

"सोने की सीता।"

"सच ?"

"सच।"

"धन्य हो रामभद्र !"

"गुरुदेव ! मैं पत्नीद्रोही महापापी हूं।"

लव-कुश ने आकर ऋषि से कहा, "गुरुदेव ! हमसे अपराध हो गया।"

"कैसा अपराध पुत्रो ?"

"हमसे इन पूज्य अतिथियों का अपमान हो गया।"

"कैसा अपमान बच्चो !"

"हमने अनजाने अश्वमेध का घोड़ा पकड़ लिया और कुमार चन्द्रकेतु से युद्ध कर बैठे।"

"बच्चो ! मैंने तुम्हारे वे अपराध क्षमा कर दिए। ऋषिवर ! ये दोनों कुमार किस कुल के हैं ? इन्हें देखकर तो हृदय उछलता है।"

"महाराज राम ! ये तुम्हारे ही समान उच्चकुल के हैं।"

राम ने उत्तेजित होकर कहा, "क्या कहा गुरुदेव !"

"शान्त हो भद्र ! ये दोनों तुम्हारी ही सन्तान हैं। पुत्र लव-कुश ! अपने प्रतापी पिता को प्रणाम करो।"

"अरे, मेरे पुत्र ! आओ बेटो ! छाती से लग जाओ। हाय रे राज-धर्म ! सबका अपनी सन्तान और बच्चों पर अधिकार होता है, केवल राजा का नहीं।"

"तो राम ! तुमने अपने पुत्रों को तो ग्रहण किया न ?"

"हां, गुरुदेव !"

"और सीता को ?"

"सीता, सीता, भगवती सीता, हाय !"

"राम ! तुम्हें संकोच क्या है ?"

"ऋषिवर ! जो कारण तब था, वही तो अब भी है।"

"रामभद्र ! सीता पर यह बड़ा अन्याय है।"

"भगवन ! इस राजधर्म पर ही धिक्कार है।"

वाल्मीकि ने क्रोध से कहा, "अरे, राजा ! यह सती अठारह वर्ष तक तुम्हारे लिए रोती रही है। चातक की भांति रट लगाए रही है। अरे, इसके पीले और उदास मुख की ओर तो देखो।"

जनक चीत्कार कर उठे, "हाय, बेटी !"

कौशल्या ने रोते-रोते कहा, "इतने बड़े राजा की रानी, वीर पुत्रों की माता, रघुकुल की बहू की आज यह दुर्दशा।"

राम सिर झुकाए बोले, "माता ! मैं राजधर्म में बंधा हूं। जब तक प्रजा को विश्वास··।"

जनक उत्तेजित हो उठे, "क्या कहा ? विश्वास ! अरे, मेरी बेटी पर अविश्वास ?"

सीता ने बाधा देकर कहा, "पिता जी ठहरिए। आर्यपुत्र को मैं फिर से अपनी परीक्षा दूंगी।"

राम ने कहा, "यदि वह परीक्षा यहां बैठे गुरुजनों की दृष्टि में ठीक हुई तो मैं तुम्हें ग्रहण करूंगा।"

"सब सावधान होकर देखें, मैं परीक्षा देती हूं···।"

"माता वसुन्धरे ! जो मैंने आज तक पति को छोड़कर और किसी का भी ध्यान किया हो, कभी स्वप्न में भी पति पर क्रोध किया हो, यदि मैं पवित्र सती हूं, तो वसुन्धरे मां ! तुम अभी फट जाओ और मुझे अपनी गोद में ले लो।"

सीता की बात समाप्त होते ही बड़े जोर की गड़गड़ाहट हुई। भूचाल-सा आ गया। सब चिल्लाने लगे। धरती फट गई और सीता उसमें समा गई।

राम-भाष्यम्

राम

उत्तर-पूर्व से अफगानिस्तान पामीर, सिन्ध और पंजाब तक भारत में देवों के प्रथम भारतीय सम्राट इन्द्र का राज्य था।

इन्द्र का यह साम्राज्य दैत्यों और दानवों के राज्यों की सीमा से लगा हुआ था और आए दिन इन देश वालों से इन्द्र के युद्ध हुआ करते थे। बृहस्पति उसके कुलगुरु थे। पत्नी का नाम तारा था। असुर याजक चन्द्र उसका वनस्पतियों का अधिपति था। उसका बृहस्पति की पत्नी तारा से सम्बन्ध स्थापित हो गया और वह उसे भगा ले गया। इसी बात पर झगड़ा बढ़ गया। चन्द्र का पक्ष दैत्यों ने लिया और अंत में एक देवासुर-संग्राम हुआ, जो 'तारकामय युद्ध' के नाम प्रख्यात है। इस युद्ध में चन्द्र ने दैत्य-दानवों की सहायता से इन्द्र को हरा दिया; पर अंत में संधि हुई और तारा बृहस्पति को लौटा दी गई; परन्तु वह गर्भवती थी और गर्भ चन्द्रमा का था। जब उसने पुत्र को जन्म दिया, तो उसे चन्द्र को दे दिया गया। इस बालक का नाम बुध रखा गया। युवा होने पर वैवस्वत मनु नामक एक आर्य नेता ने, जो सूर्य का पुत्र था, अपनी पुत्री इला उसे ब्याह दी; परन्तु अपवाद और वैमनस्य के कारण मनु और बुध दोनों ही को इन्द्र की राजधानी एलम में रहना असम्भव हो गया और श्वसुर-दामाद ने पश्चिमोत्तर के दुर्गम दर्रों को पार कर भारत में प्रवेश किया। भारत में आकर सरयू तट पर मनु ने अयोध्या नगरी बसाकर अपने पिता के नाम पर एक 'सूर्यवंश' की गद्दी स्थापित की और बुध ने अपने पिता के नाम पर 'चन्द्रवंश' की गद्दी स्थापित कर गंगा-जमुना के संगम पर प्रतिष्ठान नगरी बसायी। धीरे-धीरे इन दोनों के वंशों की अनेक शाखाएं फैलीं, जो चन्द्र-मंडल और सूर्यमंडल के नाम से विख्यात हुईं। दोनों मंडलों का संयुक्त नाम आर्यावर्त पड़ा। सूर्यवंश के उत्तर कोसल राजवंश की ३९वीं पीढ़ी में

राम का जन्म हुआ।

हरिवंश से पता चलता है कि मुद्गल, सृंजय, वृहदिषु, त्रिमिलाश्व और जयीनर ने पांचाल राज्य स्थापित किया। सहदेव (३८) के दो भाई प्रस्तोक और पिजवन थे। पुत्र सोमक था। पिजवन के पुत्र प्रसिद्ध वैदिक राजा सुदास हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इस काल में यह राज्य मुद्गल, काम्पिल्य, दिवोदास, प्रस्तोक और सहदेव (३८) में बंट गया था। दिवोदास यद्यपि सुदास के दूर के चचा होते थे; पर उनका मेलजोल सुदास से इतना था कि वे सुदास के पिता कहे गए। इसमें संदेह नहीं कि वैदिक सुदास राम के समकालीन हैं। इसका समर्थन इस बात से भी होता है कि इस वंश की ३७वीं पीढ़ी के राजा सृंजय की दो पुत्रियां भजमान यादव (४४) को ब्याही गयी थीं। भजमान के पितामह सत्यवन्त राम के समकालीन थे। इस वंश के ऋक्ष (३४) के पुत्र भृम्यश्व व उनके पुत्र मुद्गल और काम्पिल्य थे। मुद्गल को निषधपति नल की पुत्री इन्द्रसेना ब्याही गई थी। ये मुद्गल युद्धकर्ता और वेदर्षि थे। इन्हीं के पुत्र वेद में विख्यात बध्प्रश्व के पुत्र दिवोदास थे तथा कन्या अहिल्या, शरद्वन्त गौतम को ब्याही थी। राम ने अहिल्या का उद्धार किया था और दशरथ ने दिवोदास की शम्बर असुर से युद्ध करने में सहायता दी थी। वेद ने सुदास को दिवोदास और पिजवन दोनों का पुत्र कहा है। सम्भव है कि दिवोदास ने उन्हें गोद लिया हो। दिवोदास के पुत्र थे मित्रायुस, पौत्र थे सोम और प्रपौत्र मैत्रेयस। वाजसनेयी भरद्वाज (वैदिक ऋषि) के मंत्रों में आया है कि दिवोदास, प्रस्तोक और अभ्यवर्तिन चायमान ने उनका सत्कार किया। दशरथ दिवोदास के समकालीन हैं। भरद्वाज के पुत्र पायु और शुनहोत्र थे। वैदिक ऋषि गृत्समद शुनहोत्र के पुत्र थे। अहिल्या के पुत्र शतानन्द सीरध्वज जनक के पुरोहित थे।

इक्ष्वाकु के सौ पुत्र कहे जाते हैं, जिनमें इनके बाद विकुक्षि अयोध्या के राजा हुए, जो राजर्षि भी कहाते थे। इसके पुत्र पुरंजय ने युद्ध में इन्द्र की सहायता की थी। विश्वगश्व का हयदल अजेय था। श्रावस्त (१०) ने श्रावस्ती बसाई। कुवलयाश्व (१२) ने धुन्ध राक्षस को मारा। युवनाश्व महायज्ञकर्ता तथा उनके पुत्र मान्धातृ चक्रवर्ती थे। इनका विवाह शशिबिन्दु पौरव महाराज की पुत्री बिन्दुमती से हुआ। इनका दस लाख का हयबल था और इन्होंने लंका, अफ्रीका (कुशद्वीप) तथा दक्षिण महासागर के द्वीप समूहों को जय किया था। वे बड़े न्यायी, दानी और प्रबन्धक थे। इनकी हत्या मथुरा के असुर राजा ने वन में एकाकी पाकर की। पुरुकुत्स और त्रसदस्यु वैदिक नरेश हैं। नाभाग ने वेश्या स्त्री

से विवाह किया। अम्बरीश दुर्द्धर्ष योद्धा थे। दिलीप, रघु और अज प्रतापी नरेश थे।

दशरथ योद्धा और प्रतिष्ठित राजा थे। वे नीतिवान और सत्यप्रज्ञ रहे। उनकी तीन महिषियां थीं। कौशल्या, दक्षिण कोसलाधिपति भानुमान की पुत्री। सुमित्रा, मगधराज पुत्री। कैकेयी, उत्तरी-पश्चिमी आनवनरेश कैकय की पुत्री। दशरथ ने सिन्धु, सौवीर, सौराष्ट्र, मत्स्य, काशी, दक्षिण कोसल मगध, अंग, वंग, कलिंग व द्रविड़ नरेश को जीता तथा अश्वमेध यज्ञ किया था। गिरिव्रज के प्रसिद्ध युद्ध में उत्तर पांचाली ने दिवोदास की सहायता की थी। वैजयन्ती के कुलीतर के वंशधर ने तिमिध्वज शम्बर असुर को, जो रावण का साढ़ू था, परास्त किया। अंग नरेश लोमपाद इनके मित्र थे, उन्हें इन्होंने अपनी पुत्री शान्ता दत्तक दी।

इस उत्तर कोसल राज्य की कुछ शाखाएं भी हुईं। कुछ राम से प्रथम, कुछ बाद। रामपूर्व एक शाखा हरिश्चन्द्र वंश की हुई। यह हरिश्चन्द्र वंश राम के पूर्वपुरुषों का नहीं, भाई-बन्दों का था। मुख्य सूर्यवंशी राजा सिन्धु द्वीप (३०) के काल में अनरण्य ने यह सूर्यवंशी राज्य स्थापित किया। इनकी पांचवीं पीढ़ी में त्रयारुण हुए, उनके पुत्र सत्यव्रत (त्रिशंकु) और उनके पुत्र हरिश्चन्द्र हुए, जो पीछे महादानवीर प्रसिद्ध हुए। सम्भवतः यह राज्य कान्यकुब्ज के निकट कहीं स्थापित हुआ था। त्रय्यारुण राजा वेदज्ञ और प्रतापी थे। उनके पुत्र सत्यव्रत ने एक नवविवाहिता वधू का हरण किया, चाण्डालों का साथ किया, गुरु वसिष्ठ की कुछ गायें मारीं। इसी से वह त्रिशंकु कहाया और पिता द्वारा वसिष्ठ के कहने से यौवराज्य के अधिकार से च्युत हो गया। पिता के मरने पर भी उसे राज्याधिकार न मिला। वसिष्ठ ही राज्य चलाते रहे। इन्होंने म्लेच्छों का दल संगठित किया। इसी बीच कान्यकुब्ज नरेश विश्वामित्र ने वसिष्ठ पर चढ़ाई की, जिसमें वसिष्ठ ने शबरों और म्लेच्छों की सेना लेकर विश्वामित्र को पराजित कर दिया। विश्वामित्र ग्लानि के मारे लज्जित और पराजित होकर वन में चले गए। वहां त्रिशंकु ने उनके परिवार की बड़ी सहायता और सेवा की, उनके कुटुम्ब को वन में पालन किया। इस पर प्रसन्न होकर विश्वामित्र ने जोड़तोड़ लगाकर अपना और उनका बल संग्रह कर, फिर वसिष्ठ से युद्ध किया और त्रिशंकु को पिता के सिंहासन पर बैठाया और उनके यज्ञ में पुरोहित भी बने। उसके मरने पर हरिश्चन्द्र राजा हुए, जिनके काल में शुनःशेप की घटना घटी, जिनसे विश्वामित्र को राजा का विरोध करके शुनःशेप को छुड़ाना पड़ा। सम्भवतः उसी घटना के बाद वसिष्ठ भी उस राज्य को छोड़कर मूल वंश अयोध्या में आ गए और

हरिश्चन्द्र को अपना यज्ञ अपास्यआंगिरस से कराना पड़ा। उस युद्ध में हारने के बाद ही सम्भवत: विश्वामित्र ने राज-संन्यास ले लिया था। राजर्षि तो वे थे ही, ब्रह्मर्षि भी हो गए। इनके बाद उस गद्दी पर उनके पुत्र अष्टक और पौत्र लौहि (३७) बैठे। सम्भवत: उनके पौत्र लौहि से हैहय तालजंघ ने राज्य छीन लिया। बाद में विश्वामित्र ने ऋग्वेद के तीसरे मण्डल की रचना कर महर्षि पद पाया।

त्रिशंकु के पुत्र महादानी और महाबली हरिश्चन्द्र हुए, जिन्होंने दिग्विजय करके अश्वमेध यज्ञ किया। इन्होंने सौधपुर नगर बसाया। इनको चिरकाल तक पुत्र नहीं हुआ, तो इन्होंने वरुण की उपासना की और कहा कि मैं वरुण को पुत्र की बलि दूंगा। तिस पर पुत्र रोहित का जन्म हुआ, पर मोहवश राजा ने पुत्र की बलि न दी। वसिष्ठ की सलाह से वह सात बार वन को चला गया और लौट आया। बाईस वर्ष पीछे हरिश्चन्द्र को जलोदर रोग हुआ और समझा गया कि यह वरुण देवता का कोप है। अंत में राजपुत्र रोहित के स्थान पर एक ऋषिकुमार शुन:शेप को वेदर्षि अजीगर्त से हजार गाय देकर मोल लिया गया। उसकी बलि देकर यज्ञ की तैयारी होनी थी। बदनामी से बचने के लिए वसिष्ठ इस यज्ञ के पुरोहित न बने। अपास्यआंगिरस को पुरोहित बनाया गया। शुन:शेप को यज्ञ के स्तूप में बांधने को कोई राजी न हुआ, तो उसका बाप ही सौ गायें और लेकर तैयार हो गया तथा सौ गायें लेकर उसके अंग काटने को भी तैयार हो गया। यह सूचना विश्वामित्र को मिली। वह लड़का उनकी बहन का परिजन था। उन्होंने अपने पचास परिजनों को शुन:शेप के स्थान में बलि देने को कहा; पर उन्होंने नहीं माना। इस पर क्रुद्ध होकर विश्वामित्र ने उन ५० परिजनों को कुटुम्ब सहित दक्षिणारण्य में निष्कासित कर दिया तथा स्वयं यज्ञभूमि में उपस्थित होकर बालक की प्राण-रक्षा की।

यही कथा पीछे उलट-पुलट होकर हरिश्चन्द्र की प्रचलित कथा बन गई है जिसमें पिता-पुत्र दोनों के चरित्र ग्रथित कर दिए गए हैं।

इस वंश की दूसरी शाखा सगर वंश की दशरथ (३८) के काल में मध्यभारत में कहीं स्थापित की गई। इस वंश के प्रथम राजा बाहु (३८) हुए, जिन्हें हैहय राजा तालजंघ ने उत्तर भारत पर आक्रमण करते समय परास्त किया। बाहु राज्यच्युत हो अग्निऔर्व के आश्रम में रहने लगे, वहीं उनके पुत्र सगर का जन्म हुआ। बाहु उसी आश्रम में स्वर्गत हुए, पर सगर आगे चलकर बड़ा प्रतापी राजा हुआ। उसने हैहयों को जीता और अपने राज्य का विस्तार किया। उसे हैहयों के परम्परागत शत्रु अग्निऔर्व

ने भारी सहायता दी। सगर ने हैहयों की सारी शाखाओं का मूलोच्छेद किया और अपना विराट् राज्य स्थापित किया। इसका विवाह वैदर्भी केशिनी से हुआ था और उसकी कमान में ६० हजार अजेय योद्धा थे। पीछे इसने कपिल को कुपित कर स्वनाश किया। इस वंश के तीन पीढ़ी के नरेशों अंशुमान, दिलीप और भगीरथ द्वारा चार नदियों को खोदकर और मिलाकर गंगा नाम दे मैदान में लाया गया। अंशुमान राजर्षि थे। अंशुमान ने राजसूय और अश्वमेध यज्ञ किया। भगीरथ के पीछे इस वंश का पता नहीं लगता। यह भी राम के पूर्वपुरुष न थे।

दक्षिण कोसल राज्य (वर्तमान रायपुर, बिलासपुर और सम्भलपुर के आस-पास मध्यप्रदेश में) की स्थापना खट्वांग दिलीप के पुत्र दीर्घबाहु (३५) के काल में किसी सूर्यवंशी राजकुमार ने, जिनका नाम आयुतायुस था, की। इन्हीं का नाम भगस्वर भी था। इनके पुत्र ऋतुपर्ण थे, जिनके यहां प्रसिद्ध नल छद्मवेश में अश्वपाल बनकर रहे। इस समय विदर्भ में भीमरथ यादव का राज्य था। नल उत्तर पांचाल के राजा मुद्गल के श्वसुर थे।

ऋतुपर्ण के पुत्र सुदास और प्रपौत्र कल्माषपाद थे, जो राक्षसों के संसर्ग से नरमांसभक्षी हो गए। इनके पुरोहित वसिष्ठ थे। विश्वामित्र के भड़काने से इन्होंने वसिष्ठ के पुत्र तथा सम्बन्धियों को खा डाला। वसिष्ठ से कल्माषपाद की रानी के पुत्र उत्पन्न हुआ। उसके बाद ही शायद वे उसे छोड़कर उत्तर कोसल चले आये।

कल्माषपाद के बाद दक्षिण कोसल की दो शाखाएं हो गयीं। १. अश्मक-उरकाम-मूलक (४२) २. सर्वकर्मन-अनरण्य-निघनअनमित्र (४३), निषद-विदर्भ, दक्षिण कोसल, चेदि और दशार्ण राज्य की सीमाएं परस्पर मिलती थीं।

पुराणों के अनुसार हरिश्चन्द्र वैवस्वत मनु का ३३ वां और सगर ४०वां वंशधर प्रमाणित होता है। भगीरथ ४४वां, कल्पषपाद ५२ वां, मूलक ५५वां तथा राम ६३ वां। इस प्रकार ये सभी राम के पूर्ववर्ती हो जाते हैं, परन्तु पुराणों ही के अनुसार उत्तर पांचाल नरेश सुदास मनु से केवल ४३वीं पीढ़ी पर हैं तथा इन्हीं सुदास के सगे पितामह सृञ्जय की दो पुत्रियां राम के समकालीन सात्वत यादव के पौत्र भजमान को ब्याही हैं, फिर राम के मित्र अलर्क के पितामह प्रतर्दन ने वीतिहोत्र हैहय को जीता तथा सगर ने वीतिहोत्र के पौत्र और प्रपौत्र को। इधर विश्वामित्र हरिश्चन्द्र के पिता त्रिशंकु को यज्ञ कराते, हरिश्चन्द्र के यज्ञ से शुनःशेप को बचाते, ऋग्वेद में सुदास का यश गाते और राम को अस्त्र विद्या सिखाते

हैं। इस गड़बड़ी का कारण मात्र यही है कि इन तीन सूर्यवंशी शाखाओं को पुराणों में गुप्तकाल में एकत्र कर दिया गया है। वास्तव में ये तीन समकालीन पृथक् शाखाएं थीं और इनकी पृथक् राजधानियां थीं।

अब मैथिल सूर्यवंशी शाखा पर विचार कीजिए। रावी नदी के तट से चलकर माथव नामक राजर्षि अपने पुरोहित रहूगण की सलाह से राप्ती नदी के पूर्व मिथिला प्रांत में आकर बसे। उन्होंने जयन्त को राजधानी बनाया, परन्तु कुछ पुराणों के अनुसार इक्ष्वाकु पुत्र निमि ने ऐसा किया। निमि के पुत्र मिथि थे। सम्भव है इन्हें ही माथव कहा गया हो और मिथिला प्रांत माथव या मिथि के नाम पर बना हो। अथवा 'मिथि' संस्कृत का प्राकृत में माथव बन गया हो।

विदेह कुल के तेरह नामों का पता नहीं लगता है। इन्हें यदि नहीं जोड़ा जाता है, तो दशरथ और सीरध्वज की समकालीनता की संगति नहीं बैठती है। निमि याज्ञिक थे। मिथि ने मिथिलापुरी बसाई। आगे चलकर सीरध्वज ने सांकाश्य राज्य को जीता और अपने भाई कुशध्वज को वहां का राजा बनाया। कुशध्वज का सांकाश्य राज्य चार पीढ़ी तक चला। इस वंश में ब्रह्मज्ञानी खांडिक्य हुए, मितध्वज के पुत्र खांडिक्य से कृतध्वज के पुत्र केशिध्वज का प्रथम युद्ध हुआ, फिर ज्ञानचर्चा हुई। सीरध्वज जनक ही राम के श्वसुर थे।

चौथी वैशाली शाखा। वैवस्वत मनु के पुत्र नाभागारिष्ट ने एक वैश्य स्त्री से विवाह किया, इससे वह क्षत्रिय-वैश्य वंश कहलाया। नाभागारिष्ट काशी के उत्तर-पूरब बिहार प्रान्त में बस गए। ये अयोध्या के नाभाग (२८) से भिन्न हैं। इस वंश में करन्धम और मरुत्त बड़े प्रतापी हुए। मरुत्त को हिमालय में सोने की खान मिल गई। उन्होंने महायज्ञ करके महादान किया, पीछे अवशिष्ट स्वर्ण को वहीं गाड़ दिया, जिसे पाकर पौरव युधिष्ठिर ने यज्ञ किया। मरुत्त ने बृहस्पति के भाई सम्वर्त से यज्ञ कराया। इस वंश के नरेश विशाल (२६) ने विशालपुरी बसाई जो वैशाली कहाई। जब हैहय तालजंघ ने काशी जीती, तब वैशाली में प्रमति राज्यासीन थे, जो सम्भवतः अन्तिम थे। हैहयों ने उन्हें भी पराभूत किया था।

पांचवीं शर्याति शाखा के संस्थापक शर्याति मनु के पुत्र थे। इन्होंने खम्भात की खाड़ी में अपना राज्य स्थापित किया, जो आनर्त कहाया। भृगुपुत्र च्यवन शर्याति के दामाद थे, तथा पुरोहित भी। शर्याति का ऐन्द्र महाभिषेक हुआ था। शर्याति वेदर्षि भी हुए। शर्याति का पुत्र आनर्त और कन्या सुकन्या थी। सुकन्या च्यवन को ब्याही गई और आनर्त के नाम पर देश का नाम आनर्त रखा गया। यह वंश आनर्त पर २४ या २५ पीढ़ियों

न्तक राज्य करता रहा। पीछे राक्षसों से परास्त हो हैहयों में मिल गया। हैहयों की पांच मुख्य शाखाओं में एक शर्यात भी थी। राम के काल में वहां मधु यादव राजा था। हरिवंश में यह कुन्त राज्य कहा गया है। सूर्यवंशी राजा युवनाश्व का भाई हर्यश्व मधु का दामाद था।

ऋग्वेद में सरयू नदी के तट पर पहली आर्य बस्ती बनने का उल्लेख है। विदेह में पहले दलदल था, माथव ने उसे देश बनाया, कोसल के उत्तर में हिमालय, पूर्व में सदानी राप्ती, दक्षिण में सई नदी, पश्चिम में पांचाल देश था। शाक्यों का साकेत राज्य कोसल के अन्तर्गत था। अयोध्या और श्रावस्ती सूर्यवंशियों की राजधानी थी। श्रावस्ती राप्ती के निकट सहेत-महेत है। कोसल राज्य कुरु-पांचाल से पीछे और विदेह से पूर्व महत्त्वपूर्ण हुआ। इक्ष्वाकुवंशी विशाला-वैशाली, मिथिला तथा कुशीनारा में राज्य करते थे।

मनु वैवस्वत, शर्याति, त्रसदस्यु, अम्बरीष और मान्धातृ वेदर्षि थे। इक्ष्वाकु का उल्लेख ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में है। मान्धातृ, यौवनाश्व गोपथ ब्राह्मण में हैं। पुरुकुत्स ऋग्वेद में वर्णित हैं। पुरुकुत्स इक्ष्वाकु हैं, त्रसदस्यु पुरुकुत्स के पुत्र हैं। त्रय्यारुण भी इक्ष्वाकु हैं। त्रिशंकु, हरिश्चन्द्र, रोहित इक्ष्वाकु हैं। भगीरथ, भाजेरथ, अम्बरीष, ऋतुपर्ण, दशरथ और राम समर्थ पुरुष हैं। पुरुकुत्स, त्रसदस्यु, हरिश्चन्द्र, रोहित, ऋतुपर्ण आदि अयोध्या वाली सूची में वाल्मीकि ने गिने हैं, परन्तु वैदिक साहित्य से प्रमाणित है, कि सूर्यवंशी उत्तर कोसल से भिन्न शाखा में से थे। कोसल और मिथिला के बीच सदानीरा राप्ती नदी थी। शतपथ के अनुसार विदेह राज्य माथव द्वारा स्थापित हुआ।

संक्षेप में सूर्यवंशी नरेशों में मनु, इक्ष्वाकु, पुरंजय, मान्धातृ त्रसदस्यु (ऋग्वेद में प्रशंसित), वृक, नाभाग, अम्बरीष, दिलीप, रघु, अज, दशरथ राम, (मुख्यशाखा) हरिश्चन्द्र, रोहित, सगर, भगीरथ, ऋतुपर्ण, नाभागारिष्ट, कन्धम, अवीक्षित, मरुत्त, विशाल, शर्याति और यदु प्रसिद्ध हुए। इनमें मनु, इक्ष्वाकु, मान्धातृ, त्रसदस्यु, दशरथ, राम, हरिश्चद्र, सीरध्वज सगर और भगीरथ अति प्रसिद्ध हुए और उत्तर भारत में इनके नाम का डंका बजा। राम की सत्ता सर्वोपरि हुई। दशरथ ने तिमिध्वज शम्बर को, सुदासु ने वर्चिन को और राम ने रावण को जय करके राक्षसों और असुरों के तीन प्रमुख महाराज्यों को नष्ट कर दिया।

राम के समकालीन नृपति

उत्तर कोसल राज्य राम (३९), उत्तर कोसल : हरिश्चन्द्र शाखा —हरिश्चन्द्र या रोहिताश्व (३९-३८), राम के दायाद। उत्तर कोसल :

सगर शाखा—सगर (३९), राम के दायाद। दक्षिण कोसल राज्य—सुदास (३८) या मित्रसहकल्माषपाद (३९), राम के नाना और मामा, कौशल्या के पिता, भाई।

विदेह मैथिल राज्य मुख्य शाखा – सीरध्वज (३८), (कुशध्वजभाई) भानुमन्त (३९), राम के श्वसुर-साले।

मैथिल राज्य : सांकाश्य शाखा धर्मध्वज (३९)।

वैशाली शाखा-राज्य— इस वंश के अंतिम राजा प्रमति (३५) थे। इन्हें सम्भवत: हैहय तालजंघ ने जय किया। इस समय वैशाली पर हैहय वंश का कोई प्रतिनिधि राज्य कर रहा था।

शर्याति शाखा-राज्य – यह राजवंश २४ या २५ पीढ़ी तक चलकर राक्षसों से परास्त हो हैहयों से मिल गया। इस समय वहां मधु यादव राजा थे।

सूर्यवंश की इन गद्दियों के अतिरिक्त उस काल में और भी अनेक राजवंश समृद्ध हुए थे, जिनमें चन्द्रवंश सबसे प्रमुख था। यह वंश मनु के दामाद बुध ने अपने पिता चन्द्र के नाम पर स्थापित किया था और इसकी मुख्य और आदि गद्दी प्रतिष्ठान 'झूसी-प्रयाग' थी।

पौरव चन्द्रवंश मुख्य राज्य—सार्वभौम (३९), ऋक्ष (३२) का छोटा भाई।

विदर्भ का द्विमीढ़ वंश राज्य– धृतिमन्त (४०)

उत्तर पांचाल वैदिक सुदास वंश—सोमक (३९), सुदास (वैदिक)।

दक्षिण पांचाल राजवंश – रुचिराश्व।

मगध शाखा : चन्द्रवंश— सुधन्वा (प्रथम)।

काशी शाखा वत्स (ऋतुध्वज-कुवलयाश्व)।

कान्यकुब्ज शाखा।

यदुवंश-माथुर शाखा – मधु।

यदुवंशी हैहय का माहिष्मती वंश दक्षिण मालव में— दुर्जय। दुर्जय के पुत्र सुप्रतीक (४०) को प्रतर्दन और सगर ने पराजित कर इस हैहय-वंश को नष्ट कर दिया।

वैदर्भ की चेदि शाखा— सुबाहु (२८) अन्तिम नृप। आगे इस वंश का पता नहीं मिलता।

तुर्वश का मरुत्तवंश (उत्तरी बिहार)-- मरुत्त का यह प्रतापी वंश था। मरुत्त महाप्रतापी प्रसिद्ध यज्ञकर्ता। ये निःसन्तान हुए, इसलिए पौरव दुष्यन्त को गोद ले लिया, जिन्होंने शकुन्तला से भरत को जन्म दिया। जिनका अन्धे ऋषि दीर्घतमस ने इन्द्राभिषेक किया, परन्तु भरत के बाद

राम से कोई १४-१५ पीढ़ी पहले यह वंश समाप्त हो चुका था।

आनववंश उत्तर-पच्छिम शाखा-- युधाजित् (३८), दशरथ की पत्नी कैकेई के भाई, भरत के मामा। यह राज्य इसके बाद शत्रुओं ने नष्ट कर दिया और भरतपुत्र पुष्कर और तक्ष ने उसे पाया। तक्ष ने तक्षशिला बसाकर राजधानी बनाई और पुष्कर ने पुष्करावती (पेशावर) को बसाकर राजधानी बनाई।

इस प्रकार राम के समकालीन राजाओं में हरिश्चन्द्र, सगर, सुदास, कल्माषपाद, सीरध्वज, कुशध्वज, भानुमन्त, धर्मध्वज, ये सूर्यवंशी तथा सार्वभौम, धृतिमन्त, सोमक, सुदास, दिवोदास (वैदिक), रुचिराश्व, सुधन्वा, वत , मधु, दुर्जय, सुप्रतीक, लोमपाद, युधाजित अन्य राजा थे।

राक्षस-असुर राजाओं में और दैत्य वंश में— परमप्रतापी रावण, मारीच, सुबाहु थे।

ऋषियों में— वसिष्ठ, विश्वामित्र, वामदेव, ऋष्यश्रृंग, मित्र भुकाश्यप सामकाश्व, देवराट्, मधुच्छन्दस, प्रतिदर्श, गृत्समद, अगस्त्य, अलर्क, भरद्वाज।

दशरथ और राम दोनों का सबसे प्रथम उल्लेख हमें ऋग्वेद में मिलता है; परन्तु वह अयोध्या से सम्बंधित नहीं है। इसके बाद राम का पूर्ण परिचय वाल्मीकि रामायण से प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त ब्रह्मपुराण, महाभारत, विष्णुपुराण और हरिवंश तथा श्रीमद्भागवत में भी है। वाल्मीकि की रामकथा विख्यात है, जिसका सारांश यह है कि दशरथ को वृद्धावस्था तक एक पुत्री शांता के अतिरिक्त कोई सन्तान नहीं हुई। शांता को दशरथ के मित्र राजा रोमपाद (अंग नरेश) ने गोद लिया। उसका विवाह ऋष्यश्रृंग से हुआ। पीछे ऋष्यश्रृंग ने पुत्रेष्टियज्ञ कराया, जिसके फलस्वरूप राम (कौशल्या), लक्ष्मण-शत्रुघ्न (सुमित्रा), भरत (कैकेयी उत्पन हुए। किशोर वय में राम-लक्ष्मण को विश्वामित्र अपने सिद्धाश्रम में ले गए, जहां उन्होंने राम-लक्ष्मण को शस्त्रास्त्र की शिक्षा दी तथा वहीं इन्होंने ताड़िका राक्षसी और सुबाहु को मारा और मारीच को परास्त किया। तदनन्तर मिथिला जा जनक सीरध्वज के स्वयंवर में धनुष भंग कर सीता को विवाहा, साथ ही सीरध्वज की भतीजियों से तीनों कुमारों के ब्याह हुए। यहीं राम का हैहयवंश-विध्वंसकारी परशुराम से साक्षात हुआ। राम सपत्नीक कुछ दिन अयोध्या रहे और कुछ दिन मिथिला रहे। पीछे जब भरत-शत्रुघ्न ननिहाल गये हुए थे, दशरथ ने राम का राज्याभिषेक करना चाहा, जिसपर विमाता कैकेयी ने मन्थरा दासी के कुपरामर्श से पूर्वदत्त वरों के आधार पर १४ वर्ष के लिए राम-वनवास

और भरत के लिए राज्य मांग लिया। राम के वनवास जाने पर दशरथ का दुःख असह्य हो गया और वे मूर्छित हो गए। अयोध्या के राजमहल में शोक छा गया।

भरत

राम के वन-गमन के छठे दिन दशरथ की मृत्यु हो गई। तब उनके शरीर को तेल में रख सबने सम्मति करके मामा के घर से भरत को बुला भेजा, परन्तु भरत राम-वनवास और पिता की मृत्यु का दारुण समाचार सुनकर घबरा न जायें, इसलिए जो आदमी रथ लेकर उन्हें बुलाने गया, उसे समझा दिया गया कि भरत से यहां की सब बातें मत कहना। केवल पिता के रुग्ण होने की सूचना देना। पिता का रुग्ण होने का समाचार सुनकर भरत रथ पर चढ़कर तत्काल अयोध्या को चल पड़े।

मार्ग में भरत ने सूत से पूछा, "पिता जी अच्छे तो हैं? मुझे तो इधर बहुत दिनों से कुछ समाचार ही नहीं मिला। उन्हें रोग क्या है?"

सूत ने संक्षेप में उत्तर दिया, "हृदय-पीड़ा।"

"चिकित्सा हो रही है न?"

"हां, परन्तु उससे कुछ लाभ नहीं हुआ।"

"खाते-पीते क्या हैं?"

"कुछ नहीं।"

"नींद तो आती है न?"

"निर्विघ्न।"

"कुछ आशा तो है?"

"भगवान की।"

"हृदय घबराता है, तेज हांको।"

"बहुत अच्छा।" कहकर सूत ने रथ तेज हांक दिया। भरत कुछ क्षण चिन्तित भाव से बैठे रहे। फिर सामने विस्तृत मार्ग देखकर पूछा, "अब और कितनी दूर है सूत?"

"बस, सामने जो यह बहुत-से पेड़ों का झुरमुट दीख रहा है, उसके उधर ही अयोध्या है।"

"जी चाहता है पंख लगाकर उड़ जाऊं और पिता जी के चरणों में सिर रख दूं। वे झटपट उठाकर मुझे छाती से लगा लेंगे। क्यों सूत! भैया और माता तो आंसुओं से मुझे भिगो देंगे? बराबर वाले मुझे इतना हट्टा-कट्टा देखकर आश्चर्य करेंगे और लक्ष्मण तो मेरे ये मामा के देश के कपड़े-लत्ते देखकर बहुत ही हंसेंगे। पिता जी तो मुझे देखते ही चट से अच्छे हो

जाएंगे। ठीक है न सूत ?"

"अब तो आ ही पहुंचे।"

"वह सामने कौन आ रहा है ? रथ रोक दो।"

सामने एक भट आ रहा था। रथ के समीप आकर उसने भरत का अभिवादन करके कहा, "कुमार की जय हो।"

भरत ने उससे पूछा, "शत्रुघ्न कहां हैं, क्या पीछे आ रहे हैं ?"

"हां, कुमार ! सब आ रहे हैं, पर पुरोहित जी ने कहलाया है कि ·"

"क्या कहलाया है ?"

"कृत्तिका की एक घड़ी रह गई है, इसके पीछे रोहिणी नक्षत्र लगता है। आप उसी समय अयोध्या में प्रवेश करें।"

"अच्छी बात है, मैं बड़ों की बात कभी नहीं टालता। सूत ! घोड़ों को खोल दो, मैं इस मन्दिर में थोड़ा विश्राम कर लूंगा। देवदर्शन भी हो जाएंगे।"

"अच्छा कुमार !" कहकर सूत ने रथ के घोड़े खोल दिए। भरत उतरकर मन्दिरों की ओर बढ़े। मन्दिरों की शोभा देखकर वह कहने लगे, "वाह, यह तो झण्डियों और बन्दनवारों से भली भांति सजाया हुआ है। भीतों पर चन्दन की छाप लगी हैं। द्वारों पर नागकेसर और मालती की मालाएं लटक रही हैं। क्या आज यहां कोई उत्सव है ? या प्रतिदिन ऐसा ही रहता है ? पर यह किस देवता का मन्दिर है ? भीतर चलकर देखूं। वाह, क्या कारीगरी की है ! कैसी मूर्तियां बनाई हैं जो आदमी-सी दीख पड़ती हैं ! पर ये चार मूर्तियां क्यों हैं ? किसी से पूछना चाहिए।"

पुजारी भोजन करने गए थे। भोजन करके लौट ही रहे थे कि मंदिर में किसी व्यक्ति को देखकर सोचने लगे, "अभी तो मैं पूजा करके भोजन करने गया था, इतने में ही यह कौन आ गया ?" भरत ने पुजारी को देखकर कहा, "अभिवादन करता हूं।"

पुजारी ने कहा, "नहीं-नहीं, अभिवादन मत कीजिए।"

भरत ने आश्चर्य से कहा, "क्यों, किसलिए ?"

"आपने कदाचित मुझे ब्राह्मण समझा है, यह तो क्षत्रियो की मूर्तियां हैं।"

"क्षत्रियों की ? किन क्षत्रियों की ?"

"रघुवंशियों की।"

"वाह, तब तो यह अयोध्या के राजा होंगे ?"

"आप तो रघुवंशियों की भांति बोल रहे हैं। आप कहीं कैकेयी के

पुत्र भरत तो नहीं हैं ?"

"मैं दशरथपुत्र भरत हूं।"

"वही तो मैंने कहा। हाय, कुमार! बुरा हुआ।"

"क्या हुआ, कहिये, शीघ्र कहिए!"

"क्या कहूं, राम लक्ष्मण और सीता को लेकर वन को चले गए और महाराज ने उनके शोक में प्राण त्याग दिये।"

"क्या कहा ? पिता जी ।" यह कहते-कहते भरत मूर्च्छित होकर गिर पड़े। पुजारी भयभीत होकर पुकारने लगा, "अरे, कोई आओ, ये भरत कुमार मूर्च्छित हो गए हैं।"

थोड़ी देर में भरत की मूर्च्छा दूर हुई। उन्होंने पुजारी से कहा, "अब मैं सावधान हूं। मैं अयोध्या की ओर उस भांति दौड़ा जा रहा था, जैसे प्यासा आदमी सूखी नदी की ओर दौड़ा जा रहा हो। बैठ जाइए और सब स्पष्ट कहिए।"

"सुनिए, महाराज ने ज्यों ही राम को राजतिलक देने की ठानी कि आपकी माता ने ।"

"ठहरिए, पुराने वर का स्मरण कराकर अपने पुत्र को राजा बनाने का हठ किया और पिता जी ने हृदय पर पत्थर रखकर बड़े भाई से कह दिया कि जाओ बेटे वन को और जब वे कमर में तीर बांधकर वन को चले, तो यह देखकर महाराज ने प्राण दे दिए। अब इन बातों को सुनने को रह गया मैं भाग्यहीन !"

इतना कहते-कहते भरत फिर मूर्च्छित हो गए। इसी समय राजवर्ग की स्त्रियां और सुमन्त ने मन्दिर में प्रवेश किया। सुमन्त आगे-आगे चलकर उन्हें बता रहा था, "इधर से आइए महारानी, हाय, जो महाराज गगनचुम्बी महलों में रहते थे, उनकी मूर्ति ही यहां रह गई है न कंचुकी है, न मंत्री। बटोही यहां से बिना रोक-टोक नमस्कार किए चले जाते हैं।"

सुमन्त के आगे बढ़ने पर उन्हें कोई व्यक्ति मूर्च्छित पड़ा दीखा। उन्होंने कहा, "अरे, यह कौन मूर्च्छित पड़ा है ?"

पुजारी ने उत्तर दिया "कुमार भरत हैं।"

भरत का नाम सुनते ही रानी आगे बढ़ आयी और भरत को पहचानकर विलाप करने लगीं, "हाय-हाय, सचमुच यह तो कुमार भरत ही हैं।"

कोलाहल सुनकर भरत की संज्ञा लौटी। उन्होंने स्वतः कहा, "कौन ? कौन है ?"

सुमन्त ने बताया, "मैं हूं सुमन्त। कुमार ! आपका स्वर तो महाराज जैसा ही है।"

भरत स्वस्थ हुए तो बोले, "ओह, आप हैं, माताएं कैसी हैं ?"

रानी ने कहा, "पुत्र ! हम जैसी हैं, अपनी आंखों से देख लो।"

सुमन्त ने उन्हें धैर्य बंधाते हुए कहा, "महारानी ! आप धीरज धरिए।"

भरत ने उठने की चेष्टा करते हुए कहा, "आप सुमन्त ही हैं न ?"

"हां, कुमार ! मैं ही अभागा हूं। मुझे तो महाराज के साथ ही जाना था; पर ।"

"हाय, आर्य ! आप मुझे यह तो बताइए, बड़ी मां कौन-सी हैं, जिससे मैं उन्हें अभिवादन तो कर लूं।"

सुमन्त ने इंगित करके बताया, "यह देवी कौशल्या हैं।"

भरत ने प्रणाम करके कहा, "माता ! यह निरपराध अभिवादन करता है।"

कौशल्या ने आशीर्वाद दिया, "पुत्र ! आयुष्मान हो !"

सुमन्त ने दूसरी ओर इंगित करके बताया, "यह सुमित्रा देवी हैं।"

भरत ने उन्हें भी प्रणाम करके कहा, "मां ! लक्ष्मण से ठगाया हुआ, मैं अभिवादन करता हूं।"

सुमित्रा ने आशीर्वाद दिया, "पुत्र ! आयु बढ़े ! यश बढ़े !"

भरत ने सुमन्त से पूछा, "वे कौन हैं आर्य ?"

"आपकी मां कैकेयी हैं।"

"हाय-हाय, माता ! तुम मेरी माताओं में नहीं सजती हो।"

कैकेयी ने विषाद-भरी वाणी से पूछा, "पुत्र ! मैंने क्या किया ?"

"क्या किया कहती हो ? क्या नहीं किया कहो। अरे, हमें अपवाद, भाइयों को वनवास, महाराज को मृत्यु और सारी अयोध्या को क्रन्दन आपने दिया। लक्ष्मण को वन के मृग का साथी बनाया, पुत्रों और माताओं को शोक के समुद्र में डुबोया, सती सीता को वन-वन की धूल फंकायी, अब कहती हो, क्या किया है ?"

कौशल्या ने बाधा देकर कहा, "सुपुत्र ! तुम तो सब शिष्टाचार जानते हो, माता का अभिवादन नहीं किया।"

भरत ने दुःख-भरे स्वर में कहा, "आप ही मेरी मां हैं, आपका अभिवादन कर चुका।"

"नहीं, पुत्र ! तुम इन्हीं की कोख से उत्पन्न हुए हो।"

"हुआ होऊंगा। इन्होंने पुत्रों को पराया बना दिया है। अब भरत पुकारकर कहता है, यह माता उसकी माता नहीं हैं।"

कैकेयी ने विह्वल होकर कहा, "पुत्र ! मैंने तो महाराज की बात

रखने के लिए यह काम किया था।"

"कौन काम ?"

"मेरी इच्छा थी, मेरा पुत्र राजा हो।"

"राम क्या आपके पुत्र नहीं थे ? क्या वह मेरे पिता के पुत्र नहीं थे ? क्या वह सबसे बड़े होने के कारण राज्य के अधिकारी नही थे ? क्या वह हम सबको प्यार नहीं करते थे ? क्या सब लोग उन्हें प्यार नहीं करते थे ?"

"पुत्र ! मुझे वर मांगने का अधिकार था।"

"वाह, अधिकार वाले का अधिकार छीनकर उन्हें भाई और स्त्री के साथ चीवर पहनाकर आपने वन में भिजवा दिया, यही आपका अधिकार था ?"

"पुत्र ! मैंने अन्याय नहीं किया।"

"आपको जो अपवाद ही भाता था, तो उसमें मुझे क्यों घसीटा ? आपकी राजपाट की प्यास राजा नहीं बुझा सके। क्या राम के राजा बनने से आप राजमाता नहीं कहाती थीं ? अरे, आपने राज के लालच में फंसकर सभी को दुःख नहीं दिया ? सीता को चीवर पहने, नंगे पांव वन जाते देखकर भी जो आपकी छाती नहीं फटी, तो कहना होगा कि आप पत्थर की बनी हैं !" कैकेयी पुत्र की बात सुनकर रोने लगी। इसी समय राजपुरोहित तथा मंत्रीगण प्रमुखजनों को साथ लेकर वहां आ पहुंचे।

सुमन्त ने कहा, "कुमार ! ये मन्त्री, पुरोहित और नगरवासी राज-तिलक की सामग्री लेकर आए हैं। आप तिलक कराएं, क्योंकि बिना राजा के राज नहीं चल सकता।"

भरत ने उत्तर दिया, "वे सब मेरे साथ चलें।"

"आप कहां जाना चाहते हैं ?"

"वहीं, जहां राम और लक्ष्मण हैं। जहां राम, वहीं अयोध्या। जहां राम नहीं, वहां अयोध्या नहीं। सब लोग चलिए।"

यह सुनकर सब लोग भरत की प्रशंसा करने लगे और भरत के साथ वन की ओर चले। राम का आश्रम निकट आने पर भरत ने सुमन्त से कहा, "धर्मात्मा महाराज के स्वर्ग जाने पर नगर निवासियों के आंसुओं के पीछे-पीछे महात्मा राम को मनाने जा रहा हूं।"

"धन्य कुमार ! आप वही कर रहे हैं, जो आपको करना चाहिए।"

"अब और कितनी दूर है आर्य। राम अब कितनी दूर हैं, जो अयोध्या के सच्चे राजा हैं, जिन्हें देखने से पुण्य होता है, जो सत्यव्रती हैं, जिन्होंने मेरी मां का मनचीता करने के लिए राज्य को ठीकरे की भांति ठुकरा दिया। मैं उन्हें शीघ्र देखना चाहता हूं, वे मेरे देवता हैं।"

"कुमार ! यही उनका आश्रम है। यहीं पर हमारे प्राणों से प्यारे राम, लक्ष्मण और सीता के साथ रहते हैं।"

"तब रोकिए रथ।"

"बहुत अच्छा।"

"रथ रुकने पर भरत उतर पड़े और सुमन्त से कहा कि जाकर राम को सूचित करें।

"क्या कहूं कुमार !"

"कहिए कि राज्यलोलुप कैकेयी का पुत्र आया है।"

"कुमार ! माता की निन्दा नहीं करनी चाहिए।"

"आप ठीक कहते हैं, तो आप कहिए कि कुलकलंक भरत आया है।"

"भला मैं ऐसा कह सकता हूं ? मैं कहूंगा कुमार भरत आए हैं।"

"नहीं-नहीं, यह यथेष्ट नहीं है। क्या पापियों का बखान दूसरे किया करते हैं। आप ठहरिए, मैं स्वयं ही जाकर कहता हूं।"

उन्होंने राम कुटी के समीप पहुंचकर कहा, "अरे, कोई पिता की आज्ञा मानने वाले धर्मात्मा राम से कह दे कि आपका अयोग्य सेवक भरत आया है। ठहरे या जाए ?"

भरत की ध्वनि आश्रम में गूंज गई। राम ने उसे सुना। उन्होंने प्रसन्न होकर लक्ष्मण से कहा, "सुनते हो लक्ष्मण ! तुमने भी सुना सीता ! यह किसका कण्ठस्वर है ? सुनने से प्यार उमड़ने लगा। लक्ष्मण ! तनिक बाहर देखो तो कौन है ?"

लक्ष्मण ने बाहर आकर भरत और सुमन्त को देखा। सुमन्त ने भी उन्हें देख लिया। बोले, "कुमार लक्ष्मण हैं क्या ?"

लक्ष्मण ने आगे बढ़कर प्रणाम करके कहा, "अभिवादन करता हूं ! तनिक ठहरिए, आपके आने की सूचना मैं आर्य को दे आऊं।"

भरत ने कहा. "शीघ्र करो भ्राता ! मुझसे विलम्ब नही सहा जाता।"

लक्ष्मण द्रुतगति से चल दिए और राम को भरत के आने की सूचना दी। राम ने सुनकर व्यग्रता से पूछा, "क्या कहा, भरत ? देवी सीता ! भरत को देखने के लिए आंखें बड़ी-बड़ी कर लो।"

सीता ने भी लक्ष्मण से पूछा, "क्या सचमुच भरत आए हैं ?"

राम ही बोल पड़े, "नहीं तो क्या ? भाई का प्रेम कैसा होता है, यह मैं आज देखूंगा। जाओ, लक्ष्मण ! भरत को भीतर ले आओ। नहीं, तुम ठहरो, देखते हो सीता की आंखों में आनन्द के आंसू सज रहे हैं, जैसे कमल के फूल में ओस की बूंदें। भरत पर उनका कितना प्यार है, वही क्यों न

जाकर उन्हें ले आएं ?"

सीता ने कहा, "मैं ही जाती हूं आर्यपुत्र !"

सीता बाहर आईं। उन्हें देखकर सुमन्त ने भरत से कहा, "अरे, सीता स्वयं ही आ रही हैं।"

भरत ने भी उन्हें देखा, "यही जनक की राजदुलारी हैं, तपाए हुए सोने के जैसा इनका तेज झलक रहा है। यह ही हैं जिन्होंने पति के लिए राज सुख त्यागा। धन्य भगवती ! यह तो महाराज जनक की तप की प्रति-मूर्ति-सी दीख पड़ती हैं। पूज्ये ! मैं भरत आपके चरणों में अभिवादन करता हूं !"

सीता ने समीप पहुंचकर कहा, "आयुष्मान हो कुमार ! आओ, भाई के मनोरथ पूरे करो। अपने दर्शन से उनकी आंखें ठंडी करो। आओ, कुमार ! भीतर आओ।"

सुमन्त ने भी कहा, "जाइए कुमार !"

भरत ने कहा, "आप भी चलिए।"

सुमन्त ने आंखों में आंसू भर कहा, "नहीं, पहले आप जाइए।"

भरत ने अन्दर आकर राम को प्रणाम किया, "आर्य ! मैं भरत आपका अभिवादन करता हूं !"

राम ने भरत को देखते ही उठकर कहा, "आओ, भैया ! तुम्हारी बड़ी आयु हो ! आओ, मेरी छाती से लग जाओ। अपना मुंह तो ऊंचा उठाओ, मैं तनिक आंख भर कर देख लूं।"

सुमन्त ने भी अन्दर आकर राम से कहा, "आपकी जय हो राम !"

"आइए, आर्य ! पिताजी तो आपके बिना एक क्षण भी नहीं रह सकते थे। इस बार दया और प्रेम के वे अवतार आपको भी छोड़ गए ?"

"हां, भद्र ! महाराज का स्वर्गवास, आपका वनवास, भरत का शोक और अयोध्या का सूना होना, यह सब मुझे देखना पड़ रहा है।"

यह कहकर वे रोने लगे। सीता बोलीं, "आर्य ! आप हमें क्यों रुलाते हैं ?"

राम ने कहा, "सीते ! यह धीरज रखने का समय है। लक्ष्मण ! जल लाओ।"

परन्तु भरत ने लक्ष्मण को रोक दिया और स्वयं जल लाकर उन्हें दिया। राम बोले, "सीते ! लक्ष्मण के काम में तो साझा हो गया।"

सीता ने कहा, "इनका भी तो अधिकार है।"

"अच्छी बात है। हम सेवा बांट देते हैं। यहां लक्ष्मण सेवा करें और अयोध्या में भरत।"

यह सुनकर भरत बोले, "दुहाई आर्य की ! मेरा मन यहां और शरीर वहां रहेगा। आपके नाम से मैं राज का प्रबन्ध करूंगा।"

"भ्राता भरत ! ऐसा न कहो। मैं तो पिता के कहने से वन आया हूं। न क्रोध से, न गर्व से, न भय से और न बिना सोचे-समझे। हमारा वंश ही सत्यव्रती प्रसिद्ध है।"

सुमन्त ने पूछा, "अब राज्याभिषेक किसका होगा ?"

राम ने उत्तर दिया, "जिसका मेरी माता ने कर दिया।"

भरत बोले, "भैया ! घाव पर चोट मत मारिए। मेरा-आपका एक ही वंश है। केवल माता के कारण आप मुझमें दोष नहीं निकाल सकते। आप सब मुझ दुःखी को सताइए मत।"

सीता ने राम से कहा, "आर्यपुत्र ! भरत को बहुत दुःख हो रहा है। अब आप क्या सोच रहे हैं ?"

"मैं स्वर्गवासी पिता की बात सोच रहा हूं, जो अपने इस पुत्र के गुण न देख सके; परन्तु भैया भरत ! तुम्हें महाराज की बात कभी झूठ न पड़ने देनी चाहिए। सोचो तो, तुम्हारे जैसे पुत्र उत्पन्न करके भी कोई माता-पिता संसार में झूठे कहला सकते हैं ?"

"अच्छी बात है, तो जब तक आप वनवास में हैं, मैं भी यहीं रहकर आपकी सेवा करूंगा।"

"नहीं, इस तरह पिता जी के पुण्य को नष्ट न करो। भैया ! जो तुम राज्य का प्रबन्ध न करोगे, तो मैं प्रसन्न नहीं होऊंगा।"

"हाय, आपने तो मुझे कुछ कहने लायक ही नहीं रखा। अच्छा, जब तक आप वनवास में हैं, राज का प्रबन्ध मैं करूंगा।"

"क्या वनवास तक ही ?"

"निस्सन्देह, इसके बाद आपको राज लेना होगा।"

"अच्छा, ऐसा ही सही।"

"आपने सुना आर्य सुमन्त ! आपने भी सुना भाभी ! मन्त्री जी ! पुरोहित जी ! नगरवासियो ! आपने सुना ?"

सब एक स्वर से बोल पड़े, "सुन लिया, सबने सुन लिया।"

"अच्छा तो भैया, अब आप मुझे एक वर दीजिए।"

"कैसा वर ?'

"हां, एक वर। वह आपको देना ही होगा।"

"जो कुछ मेरे बस में है, तुम्हें दूंगा, मांगो !"

"अपनी खड़ाऊं मुझे दीजिए। जब तक आप वनवास से नहीं लौटते, मैं इन्हीं का दास होकर राज-काज करूंगा।"

"हाय, भरत ! मैंने इतने दिनों में जो सुयश संचय किया, वह तुमने क्षण-भर में ही प्राप्त कर लिया। भरत ! तुम मुझसे भी ऊंचे बढ़ गए।"

सीता बोलीं, "आर्यपुत्र ! भरत को मांगी हुई वस्तु दे दीजिए।"

"अच्छा भाई भरत ! लो।" यह कहकर राम ने अपनी खड़ाऊं भरत को दे दीं।

भरत ने उन्हें मस्तक से लगाते हुए कहा, "बड़ी दया, बड़ी कृपा, आपने मुझे कृतकृत्य कर दिया। मन्त्री जी ! अब आप भैया को राजतिलक कर दीजिए।" राम ने अब बाधा नहीं दी। उन्होंने सुमन्त से कहा, "आर्य सुमन्त ! जो कुछ भरत कहें, वही कीजिए।"

सुमन्त ने स्वीकार किया और राजपुरोहित ने आगे बढ़कर राम को राजतिलक कर दिया। वेदमन्त्रों का उच्चारण और शंख-तुरही की ध्वनि आश्रम में गूंज उठी। सबने राम और भरत की जय-जयकार की।

भरत बोले, "अहा, अब मैं परिचितों की दृष्टि में आदर के योग्य हुआ। अयोध्यावासी भी अब मुझे क्षमा कर देंगे। अब मैं स्वर्गवासी महाराज का सुशील पुत्र कहा जा सकूंगा। अब भाइयों की प्रतिष्ठा भी मुझे मिलेगी। आज जन्म सफल हुआ।"

राम ने कहा, "भैया ! राज्य को एक क्षण भी सूना छोड़ना ठीक नहीं है। इसी से आज ही तुम्हें लौट जाना होगा।"

"जो आज्ञा, मैं आज ही लौट जाऊंगा। नगरनिवासी आपके आने की बाट जोहते बैठे हैं। अब आपकी इन खड़ाऊंओं को दिखाकर उन्हें सुखी करूंगा।"

सुमन्त ने पूछा, "राजभद्र ! अब मैं क्या करूं ?"

"राम ने कहा, "आर्य ! महाराज की तरह भरत की रक्षा कीजिए।"

सुमन्त ने सांस खींचकर कहा, "अच्छा, जब तक सांस है, तब तक...।"

राम बोले, "भैया भरत ! मेरे सामने रथ पर बैठो।"

"जो आज्ञा !" कहकर भरत सबको प्रणाम कर वहां से चल दिए।

रामचरित

भरत जब राम को लौटाने में असमर्थ हुए, तो वे उनके प्रतिनिधि बन राज्य करने लगे। राम कुछ दिन चित्रकूट रह दण्डकारण्य में चले गए। यह निष्कासित आर्यों का स्थान था। दोषी जन को आर्य दण्डकारण्य में निष्कासित कर देते थे। वहां पंचवटी में रहे, तथा जनस्थान में अगस्त्य से मिले। राम चित्रकूट में १० मास और पंचवटी में १२ वर्ष रहे। यहां

मनुष्यभक्षी राक्षस रहते थे, उन्हें मारा। अगस्त्य ने सर्वप्रथम विन्ध्य और महाकान्तार को पार कर दक्षिण में हल्वल राक्षस को मार उपनिवेश स्थापित किया था। वैदर्भी लोपामुद्रा इनकी पत्नी थी। दोनों वेदर्षि थे। इन्होंने अरब समुद्र के जलदस्युओं को नष्ट कर जल-व्यापार निष्कंटक किया था। (ऋग्वेद) लोपामुद्रा ने राम के मित्र अलर्क को आशीर्वाद दिया था।

यहीं रावण-भगिनी शूर्पणखा और खर-दूषण से राम का विग्रह हुआ। पीछे रावण ने सीता हरण किया। इसी समय मारीच-वध हुआ, फिर सीता की खोज में ऋष्यमूक पर पम्पा सरोवर तट पर सुग्रीव, हनुमान से भेंटकर राम ने बाली को मार, सुग्रीव को किष्किंधा का राजा बनाया। पीछे हनुमान से सीता की खोज करा, समुद्र पर सेतु बांध, लंका पर अभियान किया, जहां घोर युद्ध में रावण सपरिवार मारा गया तथा सीता का उद्धार कर और मित्र विभीषण को लंका राज्य दे, राम अयोध्या लौटे। पन्द्रहवें वर्ष के ठीक प्रथम दिन राम से भरत की नन्दीग्राम में भेंट हुई। पीछे अयोध्या में राज्याभिषेक हुआ। तदनतर अपवाद के भय से राम ने सगर्भा सीता को वन में त्याग दिया, जहां ऋषि वाल्मीकि ने उसे आश्रय दिया। वहां लव-कुश दो पुत्र हुए, जिन्हें ऋषि ने सुसंस्कृत किया तथा रामचरित लिखा।

शत्रुघ्न ने यादव भीम सात्वत के आग्रह से मथुरा के शासक लवणासुर को मार, मथुरा अधिकृत किया। पीछे राम ने सीता की स्वर्णमूर्ति बना यज्ञ किया। भरत के मामा को गन्धर्वों ने मार डाला था, इससे भरत ने गन्धर्वों को मार केकय देश अधिकृत किया। समय पाकर और भी अनेक राज्य राम के परिजनों ने जय किए। राम ने कुश को युवराज बनाया। शत्रुघ्न के दो पुत्र हुए, सुबाहु और शत्रुघाती। भरत के पुष्कर और तक्ष। लक्ष्मण के अंगद और चन्द्रसेन। पीछे तक्ष ने तक्षशिला में और पुष्कर ने पुष्करावती में अपने राज्य स्थापित किए। कुश ने विन्ध्य के दक्षिणांचल में कुशस्थली में भी एक राज्य स्थापित किया। लव को उत्तर कोसल राज्य पृथक् करके दिया, राजधानी श्रावस्ती हुई। लव ने लवकोट (लाहौर) बसाया। अंगद और चन्द्रसेन (चन्द्रकेतु) चन्द्रावती और अंगद (मल्लदेश) के राजा हुए। सुबाहु को मथुरा का और शत्रुघाती को विदिशा का राज्य मिला। इस प्रकार राम ने अपने और भाइयों के आठों पुत्रों को राज्य बांटा। राम ने शत्रुघ्न, सुग्रीव, विभीषण सब मिलाकर ग्यारह राजाओं को अपने बाहुबल से राज्य जीतकर राज्याभिषेक किया। अंग, बंग, मत्स्य, शृंगवेरपुर, काशी, सिन्धु, सौवीर, सौराष्ट्र, दक्षिण कोसल, किष्किंधा

और लंका राम की मित्र शक्तियां थीं।

रामचरित अत्यन्त उदात्त और दैवी गुणों से परिपूर्ण है। वे लोकोत्तर आदर्श पुत्र, पति, पिता, मित्र और नृपति रहे। उनका शौर्य, रणपाण्डित्य और दृढ़चित्तता असाधारण थी, फिर भी राम अपने जीवन में दुःखी रहे। युवराज होते ही वनवासी हुए। वनवास-काल में सीता-विछोह और रावण-विग्रह की विपत्तियां आयीं। अयोध्या लौटने पर सीता को त्यागना पड़ा, पत्नी और पुत्र-सुख से वंचित रहना पड़ा। पीछे घटनावश लक्ष्मण को भी त्यागना पड़ा। जिससे दुःखी हो लक्ष्मण को सरयूगर्भ में जलमग्न हो प्राण-घात करना पड़ा। पीछे उनके दुःख से दुःखी राम, भरत, शत्रुघ्न तीनों को गुप्तारघाट में आत्मघात करना पड़ा।

वाल्मीकि और उनकी रामायण

रामचरित-सम्बन्धी जितने ग्रंथ संस्कृत और वर्तमान भारतीय भाषाओं में हैं, उतने कृष्ण और बुद्ध को छोड़ और किसी एक व्यक्ति के विषय में नहीं लिखे गए। बौद्धग्रंथों में भी 'राम' का वर्णन बहुत है तथा एक ग्रंथ 'दशरथ जातक' तो बहुत ही प्रसिद्ध है, जिसमें रामकथा अधिकांश में ज्यों की त्यों लिखी है। जैनग्रंथों में भी रामचर्चा बहुत है। एक जैन रामायण भी है तथा अपभ्रंश में भी जैन विद्वानों ने रामचरित पर बड़े-बड़े काव्य लिखे हैं, जिनमें स्वयंभू कवि कृत रामायण अप्रतिम है। वेद और विविध पुराणों में तो रामचर्चा है ही; परन्तु रामचरित का सबसे अधिक प्रामाणिक सांगोपांग वर्णन वाल्मीकि रामायण में ही है तथा वाल्मीकि रामायण ही विश्व-विश्रुत, सर्वाधिक प्राचीन, सर्वाधिक प्रामाणिक, सर्वाधिक सांगोपांग, पूर्ण पुस्तक है।

कहा जाता है कि वाल्मीकि राम के जीवन-काल में जीवित थे। उन्हीं के आश्रम में भगवती सीता ने निर्वासन के बारह वर्ष व्यतीत किए तथा वहीं लव-कुश नामक दो पुत्रों को जन्म दिया। वाल्मीकि ने राम के जीवन-काल में ही रामायण की रचना की तथा उसे रामात्मज लव-कुश को कण्ठस्थ कराया। कालान्तर में जब राम ने नैमिषारण्य में, जो वर्तमान सीतापुर से आठ कोस दूर एक प्रसिद्ध तीर्थस्थान है, यज्ञ किया, तब वाल्मीकि ने लव-कुश के द्वारा नैमिष में रामायण का गान कराया। इस गान को राम ने सुना। सीता का शरीरान्त भी वाल्मीकि के ही आश्रम में में हुआ।

परन्तु यह बात सर्वथा असम्भव है। निसन्देह वाल्मीकि रामायण बुद्ध और पाणिनि से पूर्व का ग्रंथ है; परन्तु यह ग्रंथ ई० पू० सातवीं शताब्दी

में आज से कोई २६०० वर्ष पूर्व लिखा गया है। इस समय यह ग्रंथ तीन पाठों में उपलब्ध है। यद्यपि तीनों पाठों में सूर्यवंश की प्राचीन वंशावली का कुछ भाग थोड़ा विकृत हो गया है, फिर भी प्राचीन इतिहास के लिए यह अत्यन्त उपादेय ग्रंथ है। फ्रांस के प्रसिद्ध पुरातत्त्वविद् स्वर्गीय श्री लेवी ने इस ग्रंथ के महत्त्व पर प्रकाश डाला है। यह बात भी अब प्रमाणित हो चुकी है कि बालकाण्ड और उत्तरकाण्ड मूल रामायण में नहीं थे। इन्हें ई० पू० तीसरी शताब्दी में जोड़ा गया था। मूल ग्रंथ में पांच काण्ड बारह हजार श्लोकों में थे। रामायण की फलश्रुति छठे काण्ड के अन्त में है, फिर भी सातवां काण्ड काफी प्राचीन है। भास (ई० पू० प्रथम शताब्दी), भदन्त अश्वघोष (प्रथम शताब्दी), कालिदास (पांचवीं शताब्दी), भवभूति (आठवीं शताब्दी ने इस काण्ड में कही घटनाओं को उद्धृत किया है। निरुक्त व्याख्याकार दुर्ग ने तो वाल्मीकि रामायण से श्लोक भी उद्धृत किए हैं। वाल्मीकि रामायण के अनेक उद्धृत श्लोक तथा उनकी छाया महाभारत में है।''

वाल्मीकि को राम का समकालीन तो कहा ही गया है, भील या डाकू एवं नीच जाति का भी बताया गया है। आजकल भंगी अपने को वाल्मीकि की संतान कहते हैं, अपनी जाति भी वाल्मीकि ही बताते हैं; परन्तु यह सारी ही बातें निराधार हैं। राम के समकालीन किसी वाल्मीकि नाम के ऋषि का कोई अस्तित्व नहीं है। यद्यपि उनका आश्रम अयोध्या के निकट ही कहा गया है; पर उसकी चर्चा केवल उत्तरकाण्ड में ही है, इससे पूर्व नहीं, जो प्रक्षिप्त हो सकती है। वाल्मीकि ई० पू० सातवीं शताब्दी के बुद्ध से कोई सौ वर्ष पूर्व के पुरुष हैं। उनका जन्म भृगुवंश (च्यवन की परम्परा में) हुआ था और वह किसी इक्ष्वाकुवंशी राजा के आश्रित थे। यह अश्वघोष का वचन है, जो ईसा की प्रथम शताब्दी में विद्यमान थे। वाल्मीकि उनसे कुछ ही सौ वर्ष पूर्व यह ग्रंथ लिख चुके थे। तब तक इस ग्रंथ का वर्तमान रूप नहीं बन पाया था और रामायण के केवल पांच कांड और बारह सौ श्लोक ही थे। केवल राम के परिपूर्ण वर्णन का यही सर्व प्राचीन ग्रन्थ है।

सीताराम के यमज पुत्र लव-कुश थे, उन्हें वाल्मीकि ने रामायण का पाठ पढ़ाया और उन्होंने उसे राम के यज्ञ में गान किया, यह भी कुछ विचित्र-सी बात है। लव-कुश राम-सीता के पुत्र थे; परन्तु हकीकत तो यह है कि प्राचीन काल में जो गाने-बजाने या कथा सुनाने का पेशा करते थे; उन्हें 'कुशीलव' कहते थे। कुशीलव का अर्थ है, 'नृत्य के साथ गाने वाले।' ऐसे नाचने-गाने वाले पुरुषों को कौटिल्य भी 'कुशीलव' कहता है। रामा-

यणकाल में नट नर्तक उत्सवों पर नाच-गाकर कथा-वार्ता सुनाते थे। संभव यही प्रतीत होता है कि ऐसे ही किन्हीं 'कुशीलव' (नटों) ने राम के यज्ञ में सीता-व्यथा की कथा सुनाई हो; परन्तु वह कथा वाल्मीकि कृत नहीं हो सकती। यदि वह कोई कथा सुनाई गई थी, तो वह अब नष्ट हो चुकी तथा रामकथा का मूलाधार वही कथा होगी, जिसे सम्भवतः वाल्मीकि ने देखा हो या उसके सम्बन्ध में कुछ सुना हो।

राम : एक महान् सांस्कृतिक पुरुष

राम एक धीर-वीर-उदात्त और कर्त्तव्यनिष्ठ पुरुष थे। उन्होंने राज-त्याग तथा पिता की आज्ञा मानकर जो यश-संचय किया, वह तो असाधारण था ही; परन्तु उनका महत्सांस्कृतिक कार्य रावण-वध और राक्षस-वंश की समाप्ति थी।

लंका बड़ी दुर्द्धर्ष और सम्पन्न पुरी थी। उसके चार द्वार थे, जिनपर उपल यन्त्र (पत्थर फेंकने के यन्त्र) लगे थे। किले के चारों ओर जलचर सेवित खाई थी। अगाध यन्त्र द्वारा जल चढ़ाने से शत्रु सेना डूब सकती थी, ऐसे राक्षसराज रावण को आमूल नष्ट करना आसान न था। राम से प्रथम पांचाल नरेश दिवोदास और दशरथ ने तिमिध्वज शम्बर के सौ किले तोड़-कर उसको मार डाला था। दिवोदास के भतीजे सुदास ने अनार्य वर्चिन को मार और भेदादि महासेनानायकों को समूल नष्ट कर भारत में अनार्य बल तोड़ दिया। अब राम ने रावण को मार भारत के दक्षिणांचल ही को नहीं, मेडागास्कर से आस्ट्रेलिया तक के समस्त द्वीप समूहों और समुद्र तटों को अनार्य प्रभाव से मुक्त कर दिया।

इस तरह शम्बर, वर्चिन और रावण का निधन होने से पम्पा, मलय, महेन्द्र, लंका और अफ्रीका तक आर्यप्रभाव हो गया। अगस्त्य ऋषि प्रथम ही दक्षिण में आर्य उपनिवेश स्थापित कर चुके थे। अब राम के द्वारा यह महत्कर्म हुआ, जिसमें राम का यश दिग्दिगन्त तक फैल गया। वाल्मीकि ने इसी से तो कहा है :

यावत्स्थास्यतिगिरयः सरितश्चमहीतले।
तावद्रामायण कथा लोकेषु प्रचरिष्यति॥

रामायण के अतिरिक्त महाभारत, ऋग्वेद, ब्राह्मण तथा पुराणों में तो रामवर्णन आया ही है, संस्कृत साहित्य में भी माघ, कालिदास, भवभूति, राजशेखर, दामोदर मिश्र आदि ने रामकथा का आश्रय ले लेखनी धन्य की है।

राम-मूर्तिपूजन

यह एक बड़ी ही महत्त्व और आश्चर्य की बात है कि राम की मूर्ति अथवा कोई चित्र भूमण्डल-भर में पूजित है। विश्व-भर में राम-माहात्म्य कैसे विस्तृत हुआ यह समझ में नहीं आता है।

सबसे प्रथम भास ने 'प्रतिमा' नाटक में प्रतिमागृह में राम के पूर्वजों की प्रतिमा की स्थापना का उल्लेख किया है। दूसरे किसी ग्रन्थ में ऐसी बात नहीं पाई गई। भास का काल ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी है। भवभूति लिखता है कि राम अयोध्या को लौटते समय पुष्पक विमान से सीता को घटनास्थल दिखला रहे हैं। 'दशरथजातक' की कुछ राम-सम्बन्धी घटनाएं सांची और बड़ौत की प्राचीन प्रस्तर-कला में अभिव्यक्त की गई हैं।

वराहमिहर 'बृहत्संहिता' में रामर्मूति १२० अंगुल की बनाई जाने का विधान कहता है। प्राचीन श्रावस्ती (सहेत-महेत) के ध्वंसों में भी हनुमान, लक्ष्मण, शूर्पणखा-संवाद-सम्बन्धी मिट्टी की मूर्तियां —जो संभवतः गुप्तकालीन हैं, मिली हैं। एक मूर्ति में शूर्पणखा पृथ्वी पर घुटने टेके, हाथ जोड़े लक्ष्मण से विवाह-याचना कर रही है। देवगढ़ देवालय में, जो छठी शताब्दी का निर्मित है और गुप्तकालीन है, रामचरित से संबंधित अनेक मूर्तियां प्रदर्शित हैं। इन मूर्तियों में राम बायें हाथ में धनुष लिए दाहिने हाथ से अभय मुद्रा प्रकट कर रहे हैं। राम के पास सीता खड़ी हैं। दाहिनी ओर लक्ष्मण शूर्पणखा के केश पकड़ प्रहार कर रहे हैं। अन्य घटनाएं भी हैं।"

मध्यप्रान्त में नीलापुर तथा ग्वालियर के उत्तर पढ़ावली के भग्न दुर्ग में १०वीं शताब्दी के एक शिव मंदिर में पत्थर पर राम-सम्बन्धी चित्र खुदे हुए हैं। 'परबाम' में गुप्तकालीन हनुमान की विराट्काय मूर्ति मिली है। पहाड़पुर (बंगाल) में ९वीं शताब्दी के कुछ राम-संबंधी चित्र खोदे हुए हैं, जिनमें वानर पत्थर उठा-उठाकर सेतुबंध के काम में लगे हैं। यहीं बाली-सुग्रीव-युद्ध प्रदर्शित है। राजशाही जिले के गणेशपुर गांव से पालकालीन मूर्तियां राम-सीता, लक्ष्मण और हनुमान की मिली हैं।

दक्षिण एलोरा के ८वीं शताब्दी के गुहास्थित कैलास मंदिर में ४२ पौराणिक घटनाएं पत्थर पर खुदी हैं। एक में रावण के कैलास-उत्थान का दृश्य अंकित है। ऐसा ही गुप्तकालीन फलक मथुरा में सुरक्षित है। पट्टदकल के विरूपाक्ष मंदिर में, जो ४७० ई० का है, पल्लव-कालीन रामचरित-सम्बन्धी मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। विजयनगर के विट्ठल स्वामी के मंदिर में तथा जिज्जी दुर्ग के मंदिर के द्वार-स्तम्भों पर भी रामचरित-संबंधी दृश्य

अंकित हैं। १५वीं-१६वीं शताब्दी की रामावतार-संबंधी कांसे की तथा आधुनिक हाथी दांत की बनी राम-लक्ष्मण-सीता की मूर्तियां बहुत हैं। यद्यपि गुप्तकालीन शिलालेखों में राम के विष्णु अवतार का कहीं भी आभास नहीं मिलता है; परन्तु कालिदास ने रघुवंश में लिखा है कि रावण को मारने के लिए ही विष्णु ने राम का अवतार लिया। उसने हरि विष्णु को राम नाम से संबोधित किया है। इसके बाद तो राम को विष्णु अवतार मान ही लिया गया। सर्वत्र ही उनकी पाषाण प्रतिमाएं प्राप्त हैं। इस सब मूर्तियों में राम के हाथ में बाण और धनुष है। ऐसी ही एक १०वीं शताब्दी की मूर्ति बर्मा के 'पैगन' स्थित 'नाथलिंग' के मन्दिर के ताक में रखी है। शिलालेखों में राम का सर्वप्रथम शिलालेख गुप्त सम्राट् समुद्र-गुप्त का एरण में है, जिसमें राम का संकेत है। भारत के अतिरिक्त मध्य एशिया, चीन, बर्मा, स्याम, कम्बोडिया, जावा, थाइलैंड में राम-संबंधी मूर्तियां और लेख मिले हैं।

जावा के प्राचीन शिलालेखों में दशरथ-पुत्र राम के प्रति श्रद्धा प्रकट करते हुए 'रामकीर्ति' का उल्लेख है। कम्बोडिया के ६ठी शताब्दी के एक शिलालेख से प्रकट है, कि वहां रात-दिन रामायण, महाभारत, पुराण का पाठ होता है। थाइलैंड की राजधानी बैंकाक के राजमंदिर की दीवारों पर रामचरितमानस-संबंधी झांकियां अंकित हैं।"

बर्मा में 'रामवती' की स्थापना ९वीं शताब्दी में राम के नाम से हुई। 'अमरपुर' बर्मा के विहार में राम, लक्ष्मण, सीता तथा वानरसेना अंकित है। कम्बोडिया के जगत्प्रसिद्ध 'हेम श्रृंगगिरि' मन्दिर में रामायण-संबंधी चित्र अंकित हैं। मध्य जावा के ९वीं शताब्दी के प्राम्बानम् के मन्दिर में ऐसे ही चित्र हैं। प्राम्बानम् में रामायण के बीस संदर्भों के चित्र हैं।

यूरोप के देशों में भी राम का प्रभाव प्रकट होता है। यूरोप की सारी ही जातियां किसी न किसी अंश में सूर्यवंश, भरतवंश और राम के नाम को सांस्कृतिक रूप में साथ ले गई हैं। खास कर जर्मनी और इंग्लैंड में तो राम से सम्बन्धित बहुत नाम हैं। फ्रांस के भी कुछ नगर और गांव राम की ध्वनि प्रकट करते हैं। इसी प्रकार स्पेन, स्वीडन, नार्वे और स्कैंडिनेविया, ग्रीस और इटली में भी है।

मानवशास्त्रियों ने मनुष्य जाति को पांच भागों से विभक्त किया है। रंग के हिसाब से ये गोरे, पीले, काले बादामी और लाल हैं। इनमें गोरी जाति प्रधान है; मिस्र, असीरिया, बेबिलोनिया, फिनिशिया, फारस, यूनान इटली, भारत, हिब्रू में बसने वाली जातियां गोरी हैं। गोरी जाति की तीन शाखाएं हैं: आर्य, सैमेटिक और हैमेटिक। आर्य सर्वप्रधान हैं। आर्यों के

अन्तर्गत भारतीयों, जर्मना, रूसियों, अंग्रेजों और फ्रांसीसियों की गणना है, इसी से इन सब जातियों में इस आर्य नेता, विजेता, मर्यादा पुरुषोत्तम राम का किसी न किसी रूप में सांस्कृतिक मिश्रण है।

होमर और वाल्मीकि

ग्रीक कवि होमर ने अपने अमर काव्य 'इलियड' में 'रामायण' से ही प्रेरणा ली है, ऐसा प्रतीत होता है और इसका समर्थन अब अनेक विद्वान भी करते हैं। अब आप इलियड और रामायण के कथानक की समता पर विचार कीजिए। इलियड के मुख्य पात्र दो भाई हैं, जिनका आपस में अत्यन्त प्रेम है। रामायण में भी राम और लक्ष्मण ऐसे ही हैं। इलियड में उन दोनों भाइयों को उनका पिता आरगल अपने राज्य से निकाल देता है, इधर राम को भी वनवास होता है। इलियड का नायक मेनेलिस हेलना को उसके पिता द्वारा आयोजित स्वयंवर में सबको जीत कर अपनाता है, उसी प्रकार राम धनुषयज्ञ में सीता का वरण करते हैं। राज्य-निकाले के समय ट्राय के बादशाह प्रायास का पुत्र पैरिस, मेनेलिस की अनुपस्थिति में उसके घर आकर उसकी पत्नी को चुराकर समुद्र पार ट्राय नगर में ले जाता है। उसी प्रकार जैसे राम के पीछे रावण सीता को चुराकर समुद्र पार लंका में ले जाता है। ट्राय के महल जमीन से बहुत ऊपर तक बसे थे, जैसे कि लंका की राजधानी भी त्रिकूट पर साधारण सतह से बहुत ऊपर बसी थी।

स्पार्टा के बादशाह मेनेलिस ने ग्रीक राजकुमार की सेना लेकर बारह सौ जहाजों से आग्नेय समुद्र पार करके ट्राय को घेरा था, उसी प्रकार, जैसे राम ने सुग्रीव की वानर सेना लेकर हिन्द महासागर पार कर लंका को घेरा था।

ट्राय के युद्ध में असंख्य यूनानी सेना थी, जिसमें घुड़सवार और रथी थे। ऐसी ही राम की सेना अपार थी। उसमें रथ भी थे। ट्राय का घेरा अमेनन के नेतृत्व में हुआ था, जिसे यूनान के राजा ने विश्वकर्मा के बनाए अस्त्र दिए थे। ऐसे ही लंका में राम ने इन्द्र का रथ, घोड़े तथा सारथी प्राप्त किए और विश्वामित्र के दिए दिव्य अस्त्रों का प्रयोग किया। ट्राय के सेनापति के बाण भी मेघनाद के बाणों की भांति उसके तरकश में लौट आते थे। हनुमान की गर्जना की भांति ही एक्लस की गर्जना ट्राय नगर की सेना में आतंक उत्पन्न कर देती है। हनुमान ने जैसे लंका के विशाल फाटक को उखाड़ फेंका था, वैसे ही हैक्टर ने ट्राय का मुख्य लौह फाटक उखाड़ फेंका था। ट्राय के युद्ध में अनेक महारथी भारी-भारी पत्थर उठा-

कर शत्रुओं पर फेंकते हैं, उसी भांति जैसे रामायण में वानर और राक्षस फेंकते हैं। ट्राय के युद्ध में और लंका के युद्ध में समान रूप से देवता आकाश में बैठकर युद्ध देखते हैं। ट्राय का वीर योद्धा मार्स जब प्लास के हाथों मरकर भूमि पर गिरा, तब सात एकड़ धरती घिर गई। रामायण में भी जब कुम्भकर्ण मरकर गिरा तो उसने भी बड़े भूभाग को घेर लिया। विभीषण की भांति ट्राय का एण्टेनर पैरिस के दुष्कृत्यों से सहमत न था, यदि वहां एण्टेनर न होता तो मेनेलिस मारा जाता, उसी प्रकार लंका में विभीषण न होता तो हनुमान का बचना कठिन था। विभीषण की ही भांति एण्टेनर ने पैरिस को समझाया था कि वह हेलना को लौटा दे। अन्त में एण्टेनर पैरिस को छोड़कर मेनेलिस से जा मिला। उसी प्रकार, जैसे विभीषण राम से जा मिला। जैसे युद्ध के बाद रावण के मरने पर राम को सीता मिलती है, उसी प्रकार पैरिस के मरने पर मेनेलिस को हेलना मिलती है और राम ने जैसे विभीषण को लंका का राजा बनाया, उसी भांति एण्टेनर ट्राय का राजा बनाया गया।

अब आप विचार करें कि वाल्मीकि और होमर के इन दोनों महान् काव्यों में कितनी समानता है। इतना ही नहीं कहावतें, मुहावरे, जीव-जन्तु और दृश्यों में भी होमर का यह महाकाव्य वाल्मीकि की रामायण से बहुत मिलता-जुलता है।

राम का काल

विचार होना चाहिए कि राम का काल क्या है? हमारे विचार से मनु का काल त्रेता युग है। इसलिए राम त्रेता-द्वापर की सन्धि में उपस्थित थे। वह काल बहुत करके मसीह पूर्व सत्रहवीं या अठारहवीं शताब्दी है। अर्थात् अब से ३८५० वर्ष पूर्व राम का राज्यकाल है।

वैवस्वत मनु से राम तक सूर्यवंश की ३९ पीढ़ियां होती हैं। इनमें शाखाओं वाले २६ नाम नहीं जोड़े गए हैं। यही काल त्रेतायुग का भोग-काल है। आधुनिक विद्वानों का भी लगभग यही निर्णय है। यह निर्णय बहुत खोज-बीन के बाद किया गया है, यहां विस्तार-भय से इसका विश्लेषण नहीं किया जा सकता।

विजयादशमी

आजकल बहुत काल से आश्विन में विजयादशमी का उत्सव मनाया जाता है, जिसमें भारत-भर में रामलीला के बाद रावण के पुतले धूमधाम से जलाए जाते हैं और माना जाता है कि इस दिन रावण की मृत्यु हुई थी,

परन्तु ऐतिहासिक दृष्टिकोण से यह बात सत्य नहीं ठहरती है।

भविष्योत्तर पुराण में यह वर्णन है कि विजयादशमी के दिन शत्रु का पुतला बनाकर उसके हृदय को बाण से बींधना चाहिए। यह सम्भव है कि लोगों ने राम-रावण मे अपने वैयक्तिक शत्रु-मित्र भावों को आरोपित करके राम-रावण के युद्ध का अभिनय नव रात्रियों के नौ दिनों में करके विजया-दशमी का सम्बन्ध रावण-वध से जोड़ दिया हो। उधर नवदुर्गा की भी वीर-पूजा होती है, जो शुम्भ-निशुम्भ असुर के देवी द्वारा हनन करने की मार्कण्डेय पुराण की कथा से सम्बन्धित है।

राम का जन्म चैत्र में हुआ। सम्भवतः तभी से वर्ष का आरम्भ चैत्र से माना जाने लगा। एक पुरानी परिपाटी यह भी थी कि चैत्र से सातवें मास में इन्द्रपूजा होती थी। पर्थियन प्राचीन इतिहास में भी ऐसा ही उल्लेख है। उस काल में भारत के अन्तर्गत नौ द्वीप थे, प्रत्येक द्वीपपति को स्वराट और समस्त भारत के अधीश्वर को सम्राट कहते थे। वर्ष के हर सातवें मास में स्वराट एकत्र होकर सम्राट का अभिवादन करते थे और शपथ लेते थे। दशहरा वही त्योहार है। हो सकता है कि रावण को जय करने के बाद राम को त्रिलोकीपति की उपाधि मिली हो और आश्विन में उनका ऐन्द्रा-भिषेक हुआ हो।

यूरोप, अमेरिका और ईरान में भी यह उत्सव मनाया जाता था। मैक्सिको में तो 'राम सीतव' उत्सव मनाने वाली एक जाति अभी भी है।

ईरान व यूरोप के अनेक स्थानों पर सातवें मास में मित्र की उपासना होती थी। मित्र सूर्य ही का नाम है। उन्होंने अपने सगे भाई वरुण पर ही अभियान किया था, जो एलम इलावर्त का अधिपति हो गया था और असुरों का 'इष्टखर' (इष्टदेव) बन गया था तथा उसने अपनी पूजा प्रच-लित की थी। वरुण का सहायक इन्हीं का भतीजा सूर्यपुत्र यम था, जो नरक (Dead Sea) क्षेत्र का अधिपति था। यम की तिथि दशमी है और वाहन भैंसा है। इसी कारण सम्भवतः दशहरा पर भैंसा मारा जाता है।

वाल्मीकि रामायण रावण की निधन-तिथि का ठीक-ठीक वर्णन नहीं करती; परन्तु हमें ऐसे आधार प्राप्त हैं कि इसका हम कुछ अनुमान लगा सकते हैं।"

जिस समय राम को रावण पर चढ़ाई करने की आवश्यकता हुई, उस समय उनके वनवास का १४वां वर्ष चल रहा था। वाल्मीकि ने वर्षा ऋतु में राम-विलाप का वर्णन किया है। लंकाकाण्ड से यह भी प्रकट है कि वर्षा के चार मास में कोई सीता को ढूंढने नहीं गया। अनुमान होता है कि

आश्विन से प्रथम सीता की खोज नहीं हुई। यह खोज कोई आसान भी न थी। जब सुग्रीव ने सीता की खोज में वानर दल रवाना किया, तो बड़ी-बड़ी नदियों तथा द्वीपों और प्रान्तों के नाम गिनाकर यूथ भेजे थे। देशों की परिगणना करते हुए उन्होंने शक, पुलिन्द, वनभूमि, कलिंग, सुम्भ, विदेह, मलय, काशी, कोसल, मगध, दण्डकूल, बग, अंग, उड़ीसा, चेदि, दशार्ण, ककुर, भोज, पाण्डय, विदर्भ, अष्टिक, माहिष्मती, उण्ड्र, द्रविड़, पुण्ड्र, केरल तथा पर्वतों में यामुन, मलय, विन्ध्य, हिमाचल, नदियों में कौशिक, शोण्ठा, यमुना, गंगा, सरयू, नर्मदा, गोदावरी, कावेरी और समुद्र, मध्यस्थ देशों और द्वीपों का नाम लिखा था। इन द्वीपों, पर्वतों और नदियों को देखते ही अनुमान किया जा सकता है कि सुग्रीव ने असाधारण साज-सज्जा से तैयारी करके वानरों के यूथ देश-देशान्तरों को भेजे होंगे। वर्षा ऋतु के बाद दशहरा ही एक ऐसा पर्व हो सकता था। सो सम्भव है कि दशहरा के दिन ही यह खोजी दल रवाना हुआ हो। कुछ लोगों का मत है कि विजयादशमी के दिन राम ने विजय की यात्रा की थी।

हनुमान ने कुछ खोजी दल प्रथम ही भेज दिए थे। जिस पर सुग्रीव ने हनुमान से कहा था, "तुमने तीव्रगति वाले दूत भेजे सो ठीक किया, परंतु अब और भी शीघ्रता से बड़े-बड़े दूतों को भेजो। उनमें जो दस दिन में लौटकर न आएगा, उसे मैं प्राणदण्ड दूंगा।" पीछे उसने एक मास की अवधि देकर सेनापतियों को ही भेजा, जिसमें स्वयं हनुमान भी थे। इस प्रकार दो मास खोज में गये, माघ में सैन्यदल चला। एक मास में समुद्र पार किया। सम्भवतः चैत्र या वैशाख में युद्ध हुआ, जो चौरासी दिन चला, जिनमें सत्तर दिन राक्षस सेनानायक लड़े। सात दिन तक रात-दिन निरन्तर राम-रावण युद्ध हुआ। अनुमान है कि रावण-निधन वैशाख कृष्णा चतुर्दशी या चैत्र कृष्णा अमावस्या को हुआ।

राम का जन्म चैत्र शुक्ला नवमी को हुआ। अठारह वर्ष की अवस्था में विवाह हुआ। विवाह के बाद बारह वर्ष अयोध्या में रहे, तीस वर्ष की अवस्था में वनवास हुआ। वनवास काल में दस मास चित्रकूट में रहे तथा बारह वर्ष पंचवटी में निवास किया। लगभग दस मास का समय राम-रावण युद्धाभियान में व्यतीत हुआ। पन्द्रहवें वर्ष के ठीक प्रथम दिन राम नन्दिग्राम में भरत से मिले। उस समय चौवालीस वर्ष की उनकी आयु थी।

सीता का अग्नि प्रवेश और परित्याग

युद्ध के बाद सीता की अग्नि-परीक्षा तथा अयोध्या लौटने पर धोबी के

अपवाद से सीता-त्याग के दो महत्त्वपूर्ण अंश रामचरित से सम्बन्धित हैं। इन दोनों का महाभारत में बिलकुल वर्णन नहीं है।

जब सीता को विभीषण ने लाकर राम के समक्ष खड़ा किया, तो राम ने कहा, "कल्याणी ! युद्ध में शत्रु को हराकर मैंने तुम्हें जीत लिया। आत्म-सम्मान की भावना से प्रेरित होकर मैंने रावण की मार डाला है। मैंने-अपमान का बदला चुकाकर मनुष्य का कर्त्तव्य पूरा किया। तुम्हारे चरित्र पर लोग संदेह कर रहे हैं, तुम मुझे वैसी ही अप्रिय लग रही हो, जैसे दुखती आंखों में दीप शिखा, इसलिए जहां तुम्हारा जी चाहे चली जाओ। मेरी ओर से तुम्हें अनुज्ञा है। ये इतनी दिशाएं तुम्हारे लिए खुली हैं। मुझे अब तुमसे कोई सरोकार नहीं।"

तब जानकी ने मुख पर छाए आंसुओं को पोंछकर कहा, "हे, वीर ! गंवार आदमी जैसे नीच स्त्रियों से बात करते हैं, उसी प्रकार तुम आज मुझसे बात कर रहे हो। तुमने मुझे जैसा समझा है, मैं वैसी नहीं हूं। रावण ने मेरा शरीर जरूर छुआ; पर मैं अवश थी। मेरे हाथ में तो केवल मेरा हृदय था, जो अब भी तुम्हारा है और लंका में मैं कैसे रही, इसके साक्षी तो यह हनुमान हैं। तुम इस वानर से ही मनोभाव प्रकट कर देते, तो मैं क्यों तुम्हारी याद में जीवित रहती, तभी प्राण त्याग देती, फिर तुम्हें इतना भारी यत्न और प्राण-संकट का कष्ट ही न उठाना पड़ता। विवाह के समय पकड़े मेरे हाथ को तुमने नहीं पतियाया। मेरी भक्ति और सदाचार को तुमने उठाकर ताक पर रख दिया। साधारण पुरुष की भांति सारी स्त्री-जाति ही को तुमने पुरस्कृत कर डाला। अरे, लक्ष्मण वीर ! मेरे लिए चिता तैयार करो ! अब अग्नि-प्रवेश को छोड़ मेरी गति नहीं।"

महाभारत में अग्नि-प्रवेश की कुछ चर्चा नहीं है, बल्कि ऋषियों, देवताओं और पितरों की गवाही को ही काफी समझ लिया गया है। यद्यपि महाभारत रामायण के बाद की है। अवश्य ही यह कथा पीछे से रामायण में जोड़ी गई है। शम्बूक-वध की कथा भी पीछे से जोड़ी गई है।

विष्णु अवतार और राम

विष्णु नाम ऋग्वेद में सूर्य का आया है। यह सूर्य मरीचि अदिति-पुत्र थे। इनके बहुत युद्ध असुरों से हुए। पीछे इन्हें देवता माना जाने लगा। ऋग्वेद में इन्द्र के बाद विष्णु का ही अधिक मान है। ऐतरेय ब्राह्मण, शतपथ तथा तैत्तिरीय आरण्यक में विष्णु देवमण्डल में गण्यमान्य पुरुष हैं। महाभारत विष्णु को परमात्मा, नारायण कहता है, यद्यपि विष्णु के मन्दिर कम हैं। शेषशायी विष्णु भुवनेश्वर, जगन्नाथपुरी तथा खजुराहो में हैं।

वाल्मीकि रामायण में राम विष्णु के अवतार नहीं हैं; परन्तु उसके नवीन संस्करणों में अवतारवाद की चर्चा है। महाभारत के नारायणीय खण्ड में दस अवतार माने गए हैं। उनमें राम भी एक हैं। वायु, वाराह, अग्नि और भागवत पुराण में भी दस अवतार हैं। हरिवंश में छः हैं। राम, कृष्ण सर्वत्र विष्णु अवतार माने गए हैं; पर पूजा कृष्ण की प्राचीन और अधिक है। पातंजल महाभाष्य में राम नाम नहीं है। भवभूति राम को अवतार मानता है। मध्वाचार्य ने सन् १२६४ में नरहरितीर्थ को सीताराम की मूर्ति लाने को जगन्नाथपुरी भेजा था तथा बदरीनाथ से वे स्वयं राम की मूर्ति लाए थे।

जहां वासुदेव कृष्ण को अवतार की भांति पूजने का उल्लेख ई० पू० छठी शताब्दी में प्राचीनतम मिलता है, वहां राम का नहीं मिलता। गुप्त महाराज चन्द्रगुप्त पांचवीं शताब्दी में विष्णुध्वज स्थापन करते हैं। चौथी-पांचवीं शताब्दी वाला आडयार तमिल संतसंघ विष्णु महिमा गाता है। छठी शताब्दी में वराहमिहर विष्णु का पूजन लिखता है। महाभारत के व्यूह-पूजन में आलंकारिक वर्णन राम-परिवार का है। १०१२ ई० में जैन ग्रंथ 'धर्म परीक्षा' ने राम को अवतार माना है। गीता में ११वें अध्याय में जो विराट रूप कहा गया है, वह विष्णु ही का है।

ईसा पूर्व सातवीं शताब्दी में वाल्मीकि रामायण, जय तथा मनुस्मृति तीन ग्रंथ बने। 'जय' बढ़ते-बढ़ते 'भारत' फिर 'महाभारत' हो गया। रामायण में भी बालकाण्ड और उत्तरकाण्ड पीछे से जोड़े गए। मनुस्मृति में भी वृद्धि हुई। पीछे पुराण बने। विष्णुपुराण पहली-दूसरी शताब्दी के लगभग बना।

चौदहवीं शताब्दी के मध्य में भारत में स्वामी रामानुज ने भक्तिमार्ग का प्रचलन करके विष्णु-पूजा आरम्भ की। इन्हीं की शिष्य परम्परा में पन्द्रहवीं शताब्दी से रामानन्द ने राम नाम का माहात्म्य स्थापित किया। इनकी शिष्य परम्परा में कबीर और तुलसी हुए। तुलसी ने राम के धर्म का सांगोपांग वर्णन किया।

□□

179

आचार्य चतुरसेन

राज्याभिषेक

"प्रभो! राक्षसकुल - निधि रावण आपसे यह भिक्षा मांगता है कि आप सात दिन तक वैरभाव त्यागकर सैन्यसहित विश्राम करें। राजा अपने पुत्र की यथाविधि क्रिया करना चाहता है। वीर विपक्षी वीर का सदा सत्कार करते हैं। हे, बली! आपके बाहुबल से वीरयोनि स्वर्णलंका अब वीर शून्य हो गयी है। विधाता आपके अनुकूल है और राक्षसकुल विपत्तिग्रस्त है, इसलिए आप रावण का मनोरथ पूर्ण करें।"

☐ महाबली रावण दीन-हीन सा हो उठा था पुत्र मेघनाद के मरने के बाद। वह राक्षसराज, जिसकी हुंकार से दिशाएं थर्राती थीं रामभद्र के पास किसी याचक की तरह यह प्रार्थना भिजवाई थी।

☐ आचार्य जी का यह प्रसिद्ध उपन्यास राम द्वारा लंका पर चढ़ाई से प्रारंभ होता है और सीता के भू प्रवेश तक चलता है। इसकी एक-एक पंक्ति, एक-एक दृश्य ऐसा जीवंत है कि पाठक को बरबस लगता है कि वह स्वयं उसी युग में जी रहा है।

☐ बहुमुखी प्रतिभा के धनी आचार्य चतुरसेन ने ५० वर्षों तक विविध विधाओं में निरंतर लेखन कार्य किया। वह एक लेखक और विचारक ही नहीं, बल्कि चिकित्सा शास्त्री भी थे। अंग्रेजी शासन में उनकी रचनाएं जब्त भी कर ली गई थी। उनके साहित्य पर अनेक विश्वविद्यालयों में शोध कार्य सम्पन्न हो चुके हैं।

सरस्वती सीरीज़

हिन्द पॉकेट बुक्स

12/-